कि काव्योपनिषद्

टीकाकार

श्री अखिलेश्वर दासजी महाराज)

प्रकाशक

श्री १०८ पं. श्री रामकृपालु शरणजी महाराज

अग्नि कुण्ड, जनकपुरधाम।

नोट-यह पुस्तक महंथ श्री बिमला विहारी शरणजी के सहयोग से छपा

प्रकाशकीय वक्तव्य

सर्व साधारण के समय, धन तथा परिश्रम को बचाने के लिये हीं संसार में अनेकानेक ग्रन्थ रत्नों के सारभाग अथवा प्रसिद्ध अंश प्रकाशित किये जाते हैं। इसी परिपाटी के अनुसार बहुत हीं बले काव्येतिहास ग्रन्थ श्री मद्वाल्मीकि रामायण का सार भाग "श्री वाल्मीकि काव्योपनिषद्" नामक ग्रन्थ प्रकाशित करता हूं। श्रीमद्वाल्मीकि हिन्दू समाज का जीवन प्राण जीवित इतिहास, जागृत उपदेशक, भक्ति मार्ग प्रदर्शक कहा जाता है। जिस हिन्दू ने इस ग्रन्थ रत्न का मनन और अध्ययन न किया उसका जीवन व्यर्थ है, जिसने इसके आदेशों पर चल कर अपना जीवन आदर्श नहीं बनाया, उसके सभी कार्य मरुभूमि के समान निष्प्रयोजन है। इसलिये यह नितांत आवश्यक समझा जाता है कि प्रत्येक हिन्दू के लिये वाल्मीकि रामायण का पठन-पाठन करना अनिवार्य है, किन्तु हिन्दू जाति दीन और दरिद्र हो गयी है। जिससे व्यय साध्य सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण नहीं खरीद सकता और अपने आदर्श को अज्ञानता वश भूलता जाता है। अतः इस श्री वाल्मीकि काव्योपनिषद् में वाल्मीकि रामायण का सार भाग रख दिया है। इससे दीन, दरिद्र, धनी-मानी सबको सुविधा होगी और जो इसका पाठ करेगें, उन्हें रामायण के पाठ करने का फल प्राप्त होगा। आशा है कि हिन्दू समाज इस ग्रन्थ को अपना कर मेरे उत्साह को बढ़ावें, जिससे मैं परिश्रम तथा व्यय को सफल समझूंगा।

भूमिका

यथा ऋषिभि र्वेदराशितः, उपनिषद् भागः पृथक् प्रकाशितः न तथा कैश्चित् वेदसम्मित वाल्मीकीय काव्यस्य उपनिषद् भागो विबेचितः, अतोऽस्माभि सुखबोधाय तदुपनिषद् भागः पृथक् प्रकाश्यते ।

गणेशं पार्वतीं शम्भुं सूर्य्यं विष्णुं सनातनम् ।
मारुतिं नारदं नत्वा वाल्मीकिं कविपुङ्गवम् ॥१॥
वाल्मीके मुर्निसिंहस्य काव्योपनिषदं पृथक् ।
सुधामिव पयम्भोधेः करोम्यमरताप्तये ॥२॥
पावकान् सरस्वतीं वाजेभिर्वा जिनीवती ।
यज्ञं वष्टुधिया बसुः ॥३॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनया मासपूर्वं सनोबुद्धया शुभया संयुनक्तु ।४।

—:#:—

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

।।*।। श्रीहनुमते नमः, श्रीगुरवे नमः ।।*।।

* श्रीचन्द्रकलायै नमः *

❀ श्रीचारुशीलायै नमः ❀

श्रीवाल्मीकिरामायणोपनिषदः

।। बालकाण्डम् ।।

तपःस्वध्यायनिरतं तपस्बी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ।।१।।

एक बार श्री नारद जी श्री वाल्मीकि जी के आश्रम पर गये। तब श्री वाल्मीकि जी ने उनका स्वागत किया, आसन देकर बैठाया, अर्घ्य-पूजन आदि करके तपस्वी श्री वाल्मीकि जी ने तप और स्वाध्याय में निरत विद्वानों में श्रेष्ठ मुनियों में पुंगव (उत्तम) श्री नारदजी से आदरपूर्वक पूछा।

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ।।२।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ।।३।।
आत्मवान् को जितक्रोधो धृतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।।४।।

हे देवर्षे! इस समय इस लोक में गुणवान् कौन है ? वीर्यवान् कौन है. धर्मज्ञ कौन और कृतज्ञ (किसी प्रकार से किये हुए को मानने वाला) कौन है, सत्य वाक्य (सत्य वचन) बोलने वाला कौन है, तथा सत्यव्रत (सत्य ही जिसका व्रत हो ऐसा) कौन है ? और उत्तम चरित्र से युक्त कौन है, सभी भूतों का हित करने वाला कौन है, विद्वान् कौन है, और समर्थ (सब प्रकार की सामर्थ्य से युक्त) कौन है तथा अद्वितीय प्रियदर्शन कौन है, आत्मवान् कौन है, क्रोध को जीतनेवाला कौन है, धृतिमान् (उत्तम धैर्यवान्) कौन है, असूया रहित कौन है, संग्राम में क्रुद्ध होने पर देवता भी किससे डरते हैं ?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम् ❀ ।।५।।

हे महर्षे श्री नारद जी ! यह मैं सुनना चाहता हूँ कि इस विषय में हमको बड़ा कौतूहल है, आप ऐसे नर को जानने में समर्थ हैं । यहाँ वाल्मीकि जी ने वेदान्त-वेद्य पुरुष को जानने की जिज्ञासा की है, क्योंकि उक्त गुणों से युक्त परात्पर पुरुष ही हो सकता है, दूसरा नहीं ।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः ।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ।।६।।

तीनों लोकों के (व्यवहार को) जाननेवाले श्री नारद जी श्री वाल्मीकि जी के वचनों को सुनकर, हे वाल्मीकि जी, सुनो ऐसा सम्बोधन करके प्रसन्न होकर वचन बोले ।।६।।

❀ (टिप्पणी :—१ नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः) ।

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥७॥

जिन गुणों का आपने कीर्तन किया है, वे गुण (एक जगह) बहुत दुर्लभ हैं ! (तथापि) हे मुने ! जानकर (सोचकर) मैं कहूँगा । उन गुणों से युक्त नर (पुरुष) को सुनो ॥७॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ।८॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिवर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥९॥

वे पुरुष इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न (प्रगट) हैं और मनुष्यों में श्रीराम इस नाम से सुने गये हैं । श्रीराम नियतात्मा हैं, अर्थात् जीवधृति देह स्वभाव परमात्मा को भी तत्-तत् कार्य में लगाने वाले हैं । महावीर्य अचिन्त्य विविध विचित्र शक्ति वाले, द्युतिमान् स्वाभाविक प्रकाशवान् अर्थात् स्वयं प्रकाशज्ञान स्वरूप हैं । धृतिमान्=निरतिशय आनन्दवान्, वशी=समस्त जगत् को वश में करने वाले, बुद्धिमान्=अतिशय बुद्धि विशिष्ट सर्वज्ञ हैं, नीति मर्यादा को जानने और पालने वाले, वाग्मी=अच्छी वाणी वाले, अर्थात् सर्ववेद प्रवर्तक, श्रीमान् उभय विभूति नायक अथवा श्रियः ईः स्वामिनी सीता तद् युक्त लक्ष्मी की स्वामिनी सीता जी से सदा युक्त, शत्रु निवर्हण=अपने आश्रित जनों के शत्रुओं का नाश करने वाले, विपुलांस=उन्नत और मांसल मोटे कंधा वाले, महाबाहु= गोल मोटी उतार-चढ़ाव भुजावाले, कम्बुग्रीव=शंख के समान ग्रीवा तीन रेखाओं से युक्त ग्रीवा वाले, महाहनु कपोल के ऊपर के भाग का नाम हनु है, वह जिनका पुष्ट है ॥

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥११॥

विशाल छातीवाले, महेष्वासा सर्व पूज्य धनुषवाले, गूढ़जत्रु =मांसल होने से दोनों कंधों के बीच की हड्डी छिपी हुई है। अरिंदम—शत्रुओं को दमन करने वाले, आजानुवाहुः—घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाले, सुशिराः—सुन्दर सम गोल छत्राकार मस्तक वाले हैं, सुललाटः=सुन्दर ललाट अर्धचन्द्राकार ऊँचे ललाट युक्त, सुविक्रमः=सुन्दर सिंह–वृषभ—हाथी बाघ की तरह पैर रखने वाले, समः=न अति लम्बे न अति छोटे शरीर वाले, समविभक्ताङ्गः=काम और अधिक परिणामों से रहित विभक्त (अलग-अलग) अंग वाले, स्निग्धवर्णः=चिक्कण श्यामल वर्ण अथवा नेत्र, दन्त, त्वक्, पाद, हस्त आदि अवयव चिक्कण वर्ण वाले, प्रतापवान्=परम तेजस्वी समुदाय शोभा सम्पन्न, पीनवक्षा= मांसल मोटी छाती वाले, विशालाक्ष=विशाल नेत्र वाले (कमल-पत्र की तरह लम्बे नेत्र वाले), लक्ष्मीवान्=सर्वावयव शोभा सम्पन्न, शुभलक्षणः– नहीं कहे गये भी समस्त लक्षणों से सम्पन्न हैं।

इस प्रकार आश्रितों के द्वारा अनुभव करने योग्य दिव्य मंगल विग्रह वाले श्रीरामजी हैं। यह कह कर आश्रितों का रक्षण के उपयोगी गुणों को नारद जी कहते हैं—

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥

श्रीरामजी शरणागत की रक्षा करना रूप धर्म के जानने-

वाले हैं और सत्यप्रतिज्ञा वाले हैं, प्रजा का हित करने में रत हैं। यशस्वी=आश्रितों का रक्षण करना, रूप कीर्ति से युक्त, स्वरूप और स्वभाव से सर्व विषयक ज्ञानशील हैं। शुचिः = पवित्रता करने वाले हैं। वश्यः =अपने आश्रितों (भक्तों) के परतन्त्र रहने वाले, समाधिमान्=आश्रितों के रक्षण की चिन्ता वाले हैं।

प्रजापति समः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।

जगत् की रक्षा करने के लिये प्रजापतियों के तुल्य, पुरुषकार भूता श्रीसीताजी से सदा अविनाशभूत, धाता=पोषक और आश्रितों के शत्रुओं का नाश करने वाले, जीवलोक की रक्षा करने वाले, तथा धर्म की तो परितः रक्षा करते हैं। अपने शरणागत रक्षण रूप धर्म की रक्षा करते हैं। अपने जन शरणागत की विशेष करके रक्षा करते हैं।

अब श्रीरामजी को (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा, न्यायशास्त्र, अष्टादश विद्याओं के अभिज्ञाता) श्री नारद जी कहते हैं—

वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।

वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), वेदों के अंग (शिक्षा, अकारादि वेद वर्णों का स्थान-प्रयत्न-स्वरादिबोधक शास्त्र, कल्प=यज्ञ की क्रियाओं के उपक्रम उपदेशक शास्त्र, व्याकरण=साधु शब्द का व्याख्यान करने वाला शास्त्र, निरुक्त= वर्णागम, वर्णलोप, वर्ण विपर्यय आदि के निश्चयार्थबोधक शास्त्र,

ज्योतिष=कर्मानुष्ठान कालादि प्रतिपादक शास्त्र, छन्द=पद्यों के वर्ण मात्रा विरति आदि का नियामक शास्त्र) के तत्वों के यथार्थ जानने वाले, धनुष विद्या में श्रीराम जी परिनिष्ठित हैं। यहाँ क्षत्रिय के लिये धनुष विद्या प्रधान है। अतः उसका नाम लिया गया। वस्तुतः धनुर्वेद, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र (इन चारों उपवेदों का) उपलक्षण है, उन चारों में निष्ठावान् (पूर्णज्ञाता हैं), वेद, उपवेद-वेदांगों के अतिरिक्त अवशेष सर्वशास्त्र (धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, मीमांसा) के अर्थतः स्वरूपतः तत्त्व के जानने वाले हैं (पूर्वमीमांसा-कर्मकाण्ड को उपवृंहण करने वाला शास्त्र, धर्म-शास्त्र, उत्तर मीमांसा ब्रह्मकाण्ड रूप वेदान्त का उपवृंहण करने वाले पुराण शास्त्र हैं, न्याय गौतमादि आचार्य प्रोक्त शास्त्र और मीमांसा शास्त्र) इन सबके तत्त्वों के जाननेवाले श्रीरामजी हैं। स्मृतिमान्=ज्ञान अर्थ के विषय में लेशमात्र भी विस्मरण नहीं होता है। प्रतिभानवान्=व्यवहार काल में सुने हुए या न सुने हुए विषयों का स्फुरण हो जाना प्रतिभा कहलाती है। तादृश प्रतिभा वाले श्रीरामजी हैं।

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥

सब लोक जिनको प्यारे हैं, अथवा जो सब लोकों के प्यारे हैं। साधुः=परोपकार में सदा निरत हैं। कभी भी दीन स्वभाव वाले नहीं होते अर्थात् कृपण स्वभाव नहीं होते, विलक्षणः= विविध वक्ता हैं। जैसे समुद्र सदा नदियों से अभिगत रहते हैं, वैसे ही श्रीरामजी अस्त्राभ्यास काल में भी सदा सत्पुरुषों (पुरोहित-ब्राह्मण, मंत्रिप्रधानादि अथवा भक्तजनों) से अभिगत रहते हैं अर्थात्

अस्त्राभ्यास केलि आदि के श्रमापनोदन काल में जब छाया में विराजते हैं तब सब सज्जन तत्-तदर्थ विशेष के निर्णय का श्रवण करने के लिए चारों तरफ से घेर कर बैठ जाते हैं। आर्यः= सर्वपूज्य अथवा अभिगमन के योग्य हैं। जाति-गुण वृत्ति आदि के तारतम्य के बिना ही सबके आश्रयणीय हैं। श्रीरामजी सदा ही प्रियदर्शन हैं अर्थात् भक्तजन सर्वदा प्रतिक्षण देखते भी रहते हैं तो भी उनको प्रति क्षण नवीन-नवीन से भासित होते रहते हैं।

स च सर्बगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्य्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

कौसल्याजी को आनन्द बढ़ाने वाले श्रीरामचन्द्रजी सर्व गुणों (उक्त और वक्ष्यमाणों) से युक्त हैं. इस प्रकार श्रीनारदजी ने "इषुक्षयान्निवर्तन्ते नान्तरिक्षक्षितिक्षयात्। मतिक्षयान्निवर्तन्ते न गोविन्दगुणक्षयात्" इस प्रमाण के अनुसार श्रीभगवान् रामजी के गुण हजारों वर्ष वर्णन करते रहने पर भी समाप्त नहीं हो सकते हैं। अतः उपसंहार रूप से यह अन्तिम वचन कहा। गम्भीरता में समुद्र की तरह हैं। (अपने भीतर के पदार्थ को प्रकाश न करना ही गम्भीरता है) जैसे समुद्र, अपने भीतर के रत्नादिकों को प्रकाशित नहीं करता है, ऐसे ही श्रीरामजी भी अपने परत्व को प्रकाशित नहीं करते हुए कहते हैं "आत्मानं मानुषं मन्ये" मैं अपने को मनुष्य मानता हूँ, यही गम्भीरता है। धैर्य में हिमालय की तरह हैं।

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ॥१८॥

वीरता के विषय में विष्णु के तुल्य हैं, चन्द्रमा की तरह प्रियदर्शन हैं, चन्द्रमा जैसे दिवा तापादि निवृत्तिपूर्वक आह्लादजनक हैं वैसे ही श्रीरामजी आश्रितों के शोक निवृत्तिपूर्वक आह्लादजनक हैं। क्रोध में कालाग्नि के समान हैं। अपने विषय के अपराध को स्वयं सहन भी कर लेते हैं, परन्तु भक्त-विषयक अपराध करने पर तो श्रीरामजी प्रज्वलित प्रलयाग्नि के समान हो जाते हैं "जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥" क्षमा में पृथिवी के समान हैं। जैसे पृथिवी सबके अपचारों को सहती है, ऐसे ही श्रीरामजी स्वविषयक अपचारों को अचेतन की तरह सहते हैं। त्याग में कुवेर की तरह हैं, अर्थात् कुवेर की भाँति दाता हैं। सत्य वचन में उत्कृष्ट वस्त्वन्तर रहित धर्म देवता की भाँति स्थित हैं।

मर्त्यलोक में परात्पर ब्रह्म के अवतार लेने का प्रयोजन कहते हैं कि महाराज श्रीदशरथजी ने अश्वमेध यज्ञ किया, तदनन्तर पुत्र-प्राप्ति के लिये वशिष्ठजी से प्रार्थना की, तब श्रीवशिष्ठजी की अनुमति से महर्षि ऋष्यशृंग ने पुत्रेष्टि यज्ञ श्रीदशरथजी सेकरवाया। उसी यज्ञ में सब देवता आवाहित हुए और सभी देवों ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की, कि आपके वरदान के कारण रावण बड़ा उद्धत हो गया है,। हमसब उसका शासन नहीं कर पा रहे हैं। इसका आप ही उपाय करें। उसी समय उस देवगोष्ठी में सर्वव्यापक सर्वाभिरामक श्रीविष्णु पदवाच्य श्रीरामजी भी वहां आ जाते हैं। तब श्रीरामजी से अवतार लेने की प्रार्थना करते और कहते हैं कि—

तस्य भार्यासु तिसृषु ह्री-श्री-कीर्त्युपमासु च।
बिष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥१९॥

महाराज श्रीदशरथजी की ह्री, श्री और कीर्ति के समान तीन रानियों में हे व्यापक श्रीराम आप अपने को साक्षात् और अंश द्वारा चार प्रकार होकर पुत्र भाव को प्राप्त हों।

ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम्।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥२०॥

तदनन्तर कमलनयन श्रीरामजी अपने को साक्षात् तथा अंशद्वारा भरतादि रूप से चतुर्धा करके राजराज श्रीदशरथ जी को पिता रूप से प्रकाशित किया, अर्थात् सबको यह ज्ञात हुआ कि श्रीदशरथजी परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी के पिता हैं।

कौसल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।

दिव्य लक्षणों से युक्त श्रीरामजी को श्रीकौसल्याजी ने प्रकट किया।

कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा ॥२१॥

अमित तेज से युक्त श्रीराम रूप पुत्र से श्रीकौसल्या शोभित हुईं। अपना यज्ञ रक्षार्थ जब विश्वामित्रजी श्रीरामजी को माँगने के लिये श्री अयोध्याजी आये तो श्रीचक्रवर्ती जी के दरबार गये; श्रीमहाराज ने आपका आतिथ्य सत्कार करके आगमन का कारण पूछा। आपने कहा कि वामनजी के आश्रम (बक्सर) में मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ परन्तु जब-जब मैं यज्ञ को आरम्भ करता हूँ और उसकी जब समाप्ति का समय आता है तब-तब मारीच और सुबाहु नामक राक्षस आकर उसमें बाधा डाल देते हैं, पूर्ण नहीं होने देते। मैंने कई बार आरम्भ किया, लेकिन पूर्ण नहीं हो पाया, मेरा श्रम व्यर्थ होता गया। मैं उन्हें शाप इसलिये नहीं देता कि वह यज्ञ ही इस प्रकार का है कि उसमें शाप नहीं दिया जाता। अतः आपसे श्रीराम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों को माँगने के लिये

आया हूँ। इनके द्वारा रक्षित होने पर मेरा यज्ञ पूर्ण हो जायगा। पुत्रकृत स्नेह आप न करें। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि इनके द्वारा वे दोनों राक्षस अवश्य मारे जायेंगे। ऐसा कहने पर महाराज के मुख पर कुछ विवर्णता देखकर विश्वामित्रजी कहते हैं—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वशिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः॥२२॥

मैंने बहुत गुरुजी की उपासना की है, उससे हमको ज्ञान प्राप्त हो गया है। योगबल से परमात्म तत्व का यथार्थ ज्ञान हमने प्राप्त कर लिया है। अतः सत्यपराक्रम महात्मा—आत्मा के भी आत्मा श्रीरामजी को मैं जानता हूँ। और, यदि आप कहें कि ऐसा आप अपने मतलब से कह रहे हैं, उसपर मैं कहता हूँ कि, महातेजस्वी मेरा विरोधी वशिष्ठजी भी जानते हैं, तथा अवतार रहस्य जानने वाले तपस्या में सदा रत पुलस्त्य अगस्त्यादिक महर्षि-गण भी जानते हैं। इन सबसे अनुमति लेकर श्रीरामजी को हमें दे देवें।

श्री विश्वामित्रजी के नियोग से ताटकावन-निवासिनी ताटका को मारकर ताटकावन से जब बाहर निकले और सिद्धाश्रम के वन को एवं सिद्धाश्रम को देखकर श्रीरामजी ने सिद्धाश्रम के इतिहास को विश्वामित्रजी से पूछा तब विश्वामित्राजी ने कहा कि सिद्धाश्रम भगवान् वामनजी का आश्रम है। इस आश्रम में तप और योग की शिक्षा देने के लिये श्रीविष्णु वामन रूप से बद्रिकाश्रम की तरह यहाँ भी रहते थे और भारतीय जनता को तप और योग की शिक्षा देते थे। इसी बीच में अदिति और कश्यपजी ने दिव्य एक सहस्त्र वर्ष का व्रत समाप्त करके भगवान् मधुसूदन की स्तुति की कि—

तपोमयं तपोराशिं तपोमूर्ति तपात्मकम्।
तपसा त्वां सुतप्तेन पश्यामि पुरुषोत्तमम्॥२३॥

आप तपोमय—तपः प्राचुर्य हैं अर्थात् तप से आराध्य हैं, तपोराशि—तप के फल को देने वाले हैं और तपोमूर्ति = ज्ञानस्वरूप हैं तथा तपात्मक—तपः स्वभाव अर्थात् ज्ञानगुणक हैं। पुरुषोत्तम—बद्धमुक्तोभयावस्था वाले जीव से परे परमात्मा हैं। आपको निष्काम भाव से की गई तपस्या से देखता हूँ।

चक्रवर्ती श्री दशरथजी श्रीरामजी का विवाह करके लौट रहे थे। मार्ग में शिवधनुष भंग के शब्द को सुनकर परशुरामजी आये और श्रीरामजी से युद्ध करने लिये उद्यत हो गये। उन्होंने कहा कि आपने एक शिवजी का धनुष तोड़ दिया है, दूसरा यह वैष्णव धनुष मेरे पास है, इसको ग्रहण कीजिये और इस पर वाण चढ़ाइये। यदि आप धनुष चढ़ाने में समर्थ होंगे तो मैं आप से द्वन्द्व युद्ध करूँगा। यह सुनकर श्रीरामजी ने उनके हाथ से धनुषवाण ले लिया और धनुष की ज्या को चढ़ाकर उस पर वाण चढ़ाकर क्रुद्ध होकर परशुराम से कहा, कि धनुष पर वाण हमने चढ़ा दिया। अब इस वाण से तुम्हारे पैरों की गति को नाश कर दूँ या तपस्या से उपार्जित तेरे लोकों को नाश कर दूँ। क्योंकि यह दिव्य वैष्णव बाण अमोघ है। परशुराम ने कहा कि मेरे पैरों की गति को नाश न करें। क्योंकि यह पृथिवी मैंने कश्यपजी को दान में दे दी है। कश्यप ने कहा था कि हमारी भूमि पर अब आप बास न करना। अतः मैं यहाँ नहीं रहना चाहता हूँ। इस वाण से तपसोपार्जित मेरे लोकों को ही नाश कर दें। श्रीरामजी ने वैसा ही किया। तब परशुरामजी ने श्रीरामजी की स्तुति की—

अक्षयं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरोत्तमम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात्स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥२४॥

एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥२५॥

हे राम, मैंने आपको जान लिया, आप निर्विकार हैं, मधुदैत्य के हन्ता हैं और देवों में श्रेष्ठ हैं। इस धनुष के परामर्श से ही मैंने आपको जान लिया। हे शत्रुतापक श्रीरामजी आपका कल्याण हो। आकाश में आये हुए सब देवगण उपमा रहित कर्म विशिष्ट और संग्राम में भी प्रतिभट (शत्रु) से रहित आपको देख रहे हैं। इत्यादि प्रार्थना करके परशुरामजी महेन्द्र पर्वत की ओर चले गये और श्रीरामजी अपनी बारात के साथ अयोध्या जी आ गये।

इति श्री ललितकिशोरीशरण संगृहीतायां
वाल्मीकि काव्योपनिषदि
बालकाण्डं समाप्तम्

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

।। श्रीहनुमते नमः । श्रीवाल्मीकये नमः ।।

अथ अयोध्याकाण्डोपनिषद्

श्रीशत्रुघ्न जो के साथ श्रीभरतजी के ननिहाल चले जाने पर श्रीरामजी के अनेक अभिराम गुणों से आकृष्ट हृदय श्री दशरथ जी श्रीरामजी को युवराज मानने लगे। यौवराज्य पद की सिद्धि के लिये केकयराज के बिना अनेक नृपपुंगवों को बुलवाकर उनके समेत सभामण्डप में प्रवेश कर, मातुल कुल में गये हुए श्रीभरत-शत्रुघ्न का बारम्बार स्मरण करते हैं। क्योंकि दशरथजी को अपने शरीर से निकली हुई चार भुजाओं की तरह चारो पुत्र प्रिय थे। तथापि—

तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः।।१।।

भूतों के मध्य में ब्रह्मा की तरह चारों पुत्रों के मध्य में अतिशय गुण वाले महातेजस्वी श्रीरामजी पिता (दशरथ) जी को निरतिशय प्रीति करनेवाले हुए।

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।।२।।

उद्भट रावण के वधार्थी देवगणों से प्रार्थित होकर सनातन विश्वव्यापक श्रीरामजी मनुष्य लोक में प्रादुर्भूत हुए थे। इस मंत्र से "अजायमानो बहुधा विजायते" इस श्रुति की प्रसिद्धि का

द्योतन किया। अर्थात् कैसे प्रादुर्भूत हुए ? क्योंकि लोक तो गर्भ में दस मास रहकर पैदा होता है। आप तो "ततश्च द्वादशे मासे", इस प्रमाण से बारह मास गर्भ में बास कर प्रादुर्भूत हुए।

बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः।

(उक्त और अनुक्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त) श्रीरामजी बाहर विचरने वाले प्राणों की तरह प्रजाओं को अपने गुणों से प्रिय हुए।

अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः ।।३।।

और संग्राम में परस्पर के वैरभाव को त्याग कर अत्यन्त क्रुद्ध देवता दैत्यों से धर्षणा करने योग्य नहीं हैं। सर्वथा विजयी हैं।

धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।

धर्म, काम, अर्थ के तत्त्व के (किस समय किस को करना चाहिये इस रहस्य के) पूर्णतया ज्ञाता हैं। परिज्ञात विषय के विस्मरण रहित हैं, तथा नवीन-नवीन उन्मेषशालिनी बुद्धि से सम्पन्न हैं।

अमाघः क्रोध हर्षश्च त्यागसंयमकालवित् ।।४।।

श्रीरामजी का क्रोध और हर्ष अमोघ (निरर्थक नहीं) होता है। अर्थात् "नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन"। "हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्ये न च कुप्यति। युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति"। श्रीरामजी का क्रोध और प्रसाद निरर्थक कभी नहीं होता। नियम से शास्त्रद्वारा जो वध के योग्य है, उसको अवश्य ही मारते हैं और जो शास्त्र से अवध्य है उसके ऊपर कभी रुष्ट नहीं होते हैं। जिसके ऊपर प्रसन्न होते उसको प्रसन्न होकर अर्थों से युक्त कर देते हैं। त्याग और संग्रह के काल को जानने-वाले हैं। जैसे भगवान सूर्य आठ महीना जल का संग्रह करते हैं और वर्षा के चार महीनों में त्याग करते हैं। ऐसे ही श्रीरामजी

समय पर प्रजा से धन का संग्रह करते हैं और समय पर उदारता-पूर्वक त्याग (प्रजा के हित में व्यय) भी कर देते हैं।

तं देवदेवोपममात्मजं ते सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम्।
हिताय नः क्षिप्रमुदारजुष्टं मुदाभिषेक्तुं वरद त्वमर्हसि ॥५॥

स्वयं पृथिवी अथवा पृथिवीस्थ जनता श्रीचक्रवर्ती जी से प्रार्थना करती है कि हे वरद श्री चक्रवर्ती जो महाराज, विष्णु के समान सर्वलोक के हित करनेवाले तथा औदार्य गुण युक्त या उदार पुरुषों से सेवित अपने पुत्र श्रीरामजी को हमसब के हितार्थ बहुत जल्दी अभिषिक्त करें।

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥६॥

श्रीकैकेयीजी के महल में श्री चक्रवर्ती जी व्याकुल दशा में पड़े हैं। उनकी दशा को देखकर सुमन्तजी घबरा जाते हैं। कैकेयी की प्रेरणा से श्रीरामजी को बुलाने जाते हैं और श्रीरामजी के महल में वे जब पहुँचते हैं, तो उस समय का यह वर्णन है कि तपते हुए सूर्य की तरह अपने असाधारण तेज से युक्त वर देने वाले श्रीरामजी को विनयज्ञ वन्दी श्री सुमन्त जी ने विनीत भाव से नमस्कार किया।

श्रीरामजी को लेकर सुमन्त जी चले और राजमार्ग में पुरवासियों के वचनों को सुनते हुए आ रहे हैं,पुरवासी कहते हैं कि-

अहमद्यहि भुक्तेन परमार्थैरलं च नः।
यदि पश्याम निर्यान्तं रामं राज्ये प्रतिष्ठितम् ॥७॥

यदि राज्य पर प्रतिष्ठित और (राज छत्र से सुशोभित राजरथ पर बैठे) पिताजी के महलों से बाहर निकल कर अपने

महलों की ओर जाते हुए श्रीराम जी को हम सब देख लेंगे तो फिर आज ऐहिक भोगों और मोक्ष के साधनों से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् हमारे लौकिक भागों और परमार्थ साधन जपहोम-ध्यानादिकों का यही फल है कि हमसब को राज्याभिषिक्त श्रीरामजी के दर्शन हो जायँ।

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति ।
निन्दितः स वसेल्लोके स्वात्माऽप्येन विगर्हते ॥८॥

जो श्रीरामजी को नहीं देखता अथवा जिसको श्री रामजी नहीं देखते हैं, वह व्यक्ति निन्दित होता हुआ लोक में वसता है। अर्थात् लोक में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो उसकी निन्दा न करे। परन्तु लोक में ऐसे भी विषयी मनुष्य हैं कि लोक-निन्दा होते हुए भी सन्तुष्ट होकर जीवित रहते हैं। लेकिन श्रीराम कटाक्षाविषयी मनुष्य की उसका अन्तःकरण ही विशेष निन्दा करता है।

श्रीकैकेयी माता के वरदान पर श्रीरामजी वन चलने के लिये तैयार हो गये, श्रीकौसल्या माता जी और श्रीलक्ष्मण जी को समझा चुके तथा कौशल्या अम्बा जी ने आपका मंगला-नुशासन कर दिया। तब श्रीजानकीजी ने साथ चलने की प्रार्थना की, श्रीरामजी ने श्रीजानकीजी को वन के दुःख सुनाये, उस पर श्रीजानकीजी कहती हैं—

अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव ।
रूपं दृष्ट्वाऽपसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥९॥

हे राघव ! सिंह, व्याघ्र, हाथी, शार्दूल आदि वनचारी हिंसक जीव आपके रूप को देखकर भाग जायँगे क्योंकि आपके रूप को

उन्होंने पहले देखा नहीं है; अतः अवश्य ही आपको देखकर भाग जायेंगे तथा आप सभी डरते भी हैं।

जब श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण जी वन की ओर प्रस्थान कर चुके, तब अयोध्या जी से श्रीदशरथजी की आज्ञा से सुमन्त जी के द्वारा लाये गये रथ पर बैठ कर वन को चल दिये, तब श्रीरामजी के वियोग में श्रीकौसल्या अम्बा व्याकुल हो रही हैं। उनको सांत्वना देती हुई श्रीसुमित्रा अम्बा कह रही हैं—

तदार्ये सद्गुणैयुक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः।
किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥१०॥

हे सर्वश्रेष्ठ आर्ये, श्रीकौशल्ये ! असाधारण सौशील्यादि उत्तम गुणों से युक्त अतएव पुरुषोत्तम आपके पुत्र श्रीरामजी हैं। अतः दीनतासूचक विविध प्रकार के कथन और कृपण की तरह रुदन से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् सद्गुण सम्पन्न पुरुषोत्तम श्रीराम सर्वव्यापक हैं तो वे अयोध्या में भी हैं ही; उनके विषय में शोक करना अयुक्त है।

व्यक्तं रामस्य विज्ञाय शौचं माहात्म्यमुत्तमम्।
न गात्रमंशुभिः सूर्यः सन्तापयितुमर्हति ॥११॥

देवताओं में प्रसिद्ध अति पवित्रकारक अतएव उत्तम श्रीरामजी के माहात्म्य को जानकर सूर्य भगवान् अपनी किरणों से श्रीरामजी का गात्र तपा नहीं सकते।

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्या कीर्तिः क्षमाक्षमा ॥१२॥

दैवतं दैवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥१३॥

क्योंकि श्रीरामजी सर्वप्रकाशक सूर्य के भी सूर्य (प्रकाशक) सर्वदाहक अग्नि (दाहक) सर्वनियन्ता के भी नियन्ता हैं। लक्ष्मी के भी प्रधान लक्ष्मी हैं, कीर्ति के कीर्ति. और क्षमा के भी क्षमा हैं। देवताओं के देवता (कार्यनिर्वाहक) हैं। अथवा भूतों (पृथिवी आदि नीचे लोकों में रहने वालों) तथा देवताओं (ऊपर के देशों में रहने वालों) के दैवत (देवता पूज्य हैं और भूत सत्तम हैं, अर्थात् भूत =सत्ता, अतः सबकी सत्ता श्रीरामाधीन है), ऐसे सर्वगुण सम्पन श्रीरामजी के वन में वा नगर में कौन नित्यगुणों का विरोधी है, अर्थात् कोई भी नहीं है। शृंगवेरपुर से चलकर श्रीरामजी प्रयाग में श्रीभरद्वाज जी के आश्रम में पहुँचते हैं तव भरद्वाज जी श्रीराम जी से कहते हैं—

"चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम्"

हे काकुत्स्थ श्रीराम ! आपका इस आश्रम में आगमन बहुत काल से देख रहा हूँ, भरद्वाज जी का यह कहना श्रीराम जी के प्रथमावतार की अपेक्षा है अथवा भरद्वाज जी कहते हैं कि हे काकुत्स्थ आपके समीप में आने की प्रतीक्षा बहुत काल से कर रहा था कि आप कब आते हैं ।

श्रीराम जी पिता की आज्ञा से वन गये और अयोध्यावासी तमसा नदी तक साथ में हो गये। रात्रि में अयोध्यावासियों को

सोते हुए ही छोड़ कर श्री राम जी आगे चले गये। प्रातःकाल में अयोध्यावासी श्रीराम जी को न देख कर बड़े व्याकुल हुए। इधर-उधर चारों तरफ खोजे; बाद में रोते-विलखते सब अयोध्या लौट आये। उसी प्रसंग में अयोध्या की जनता कह रही है—

किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा।
पुत्रैर्वापिं सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥१४॥

जो श्रीराम जी को आदरपूर्वक नहीं देखते, उनको घर, दारा, धन, पुत्र इत्यादि सांसारिक सुख ही प्राप्त होता है। क्योंकि श्रीराम जी को आदर पूर्वक नहीं देखने के कारण तथा गृह, पुत्र, स्त्री, धन के प्रति आसक्ति पर मोक्षद्वार से लौटे हुए प्राणी को बारम्बार सांसारिक चीजें ही प्राप्त हुआ करती हैं। उन्हें मोक्ष कभी नही मिल सकता।

यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ॥१५॥

जहाँ पर श्रीराम जी हैं, वहाँ भय और पराभव नहीं है। श्रीराम जी को वन से लौटाने के लिये अयोध्यावासियों के समेत श्रीभरत जी चित्रकूट जा रहे हैं। चित्रकूट के पास पहुँचने पर जब उन्हें श्रीरामजी से भेंट नहीं हुई, तब श्रीराम-दर्शन के लिये व्याकुल होकर भरत जी कहते हैं—

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति ॥१६॥
यावन्न चन्द्रसंकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम्।
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ॥१७॥

जबतक श्रीराम, लक्ष्मण और महाभागा श्रीवैदेही जी को नहीं देखूंगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं होगी। जबतक भ्राता श्रीराम जी के कमल के समान विशाल नेत्रों से युक्त चन्द्र-सदृश शुभ मुखारविन्द को न देखूंगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं होगी।

चित्रकूट में श्रीभरत जी को उपदेश देते हुए श्रीराम जी कहते हैं—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगाः विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥१८॥

जैसे संगृहीत धन आदि पदार्थ बहुशः सम्पादित होने पर भी क्षयान्त है, अर्थात् विनाश होने पर उसका अन्त हो जाया करता है। (यानी चोर, काम और सजा के द्वारा नाश हो जाता है) उसी प्रकार समुच्छ्राय—अत्यन्त समुन्नत भी पद का, पतन होने पर अन्त हो जाता है। अर्थात् अति उन्नत पद पर स्थित भी ब्रह्मेन्द्रादि देव अपने-अपने अधिकार की समाप्ति दशा में उस पद से भ्रष्ट होकर नीचे गिर जाते हैं, पुत्र, मित्र, कलत्रादि का संयोग भी जब तक विप्रयोग—विरह नहीं हुआ है तभी तक रहता है। जीवित (उत्कृष्ट जीवन) भी मरण पर्यन्त ही हुआ करता है। परिहार रहित मरणाधीन भंगशाली है (अतः पितृमरण पर भी शोचनीय नहीं है)।

चित्रकूट से श्रीराम जी की चरणपादुका लेकर श्रीभरत जी अयोध्या जी आकर उसे राजगद्दी पर पधराकर, आप नन्दि-

ग्राम में तपस्या करने लग जाते हैं। इधर श्रीरामजी चित्रकूट से चल देते हैं और महर्षि अत्रि जी के आश्रम में चल कर पहुँचते हैं। अत्रिजी से सत्कृत होकर श्रीराम जी उनके पास विराजमान हैं तथा श्रीकिशोरी जी अनसूया जी के पास जाती हैं। अनसूया जी उनका सत्कार करके किशोरी जी से विवाह सम्बन्धी बातें पूछती हैं। उसी प्रसङ्ग में श्री किशोरीजी अपनी उत्पत्ति का आख्यान कहती हैं —

तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमङ्गलम्।
अहं किलोत्थिता भित्वा जगतीं नृपतेः सुता ॥१९॥

शास्त्र विहित हाथ में हल लेकर यज्ञोपयोगी क्षेत्र को जोतते श्रीजनकजी महाराज के सामने पृथिवी को फाड़ कर मैं प्रकट हुई। एतावन्मात्र से मैं जनक जी की सुता के रूप में प्रसिद्ध हुई। वस्तुतः मैं स्वयं प्रकट हुई।

इति श्रीललितकिशोरीशरण संगृहीतायां
बालमीकीयकाव्योपनिषदि
॥ अयोध्याकाण्डं समाप्तम् ॥
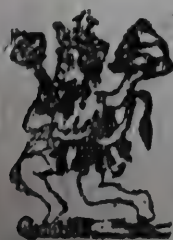
* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

॥ * ॥ श्रीहनुमते नमः, श्रीवाल्मीकये नमः ॥ * ॥

श्रीवाल्मीकिरामायणोपनिषदः

॥ अथारण्यकाण्डम् ॥

महर्षि श्रीअत्रि के आश्रम से श्रीराम जी दक्षिण दिशा की ओर चले और महर्षियों के आश्रमों को देखते हुए जा रहे हैं तब महर्षिगण अर्घ्यादि से श्रीराम जी की पूजा करते हैं। उसी समय के वृत्तान्त का महर्षि वाल्मीकि जी वर्णन करते हैं—

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः।
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ॥१॥

लोक से विलक्षण ज्ञान से सम्पन्न (अतीत अनागत ज्ञान वाले) अर्थात् यह श्रीराम जी रावण के बध के लिये अवतीर्ण परात्पर सर्वव्यापक पुरुष हैं। श्रीसीता जी श्री की भी श्री हैं। लक्ष्मण जी श्रीराम जी का अंश जीवमात्र के प्रतिनिधि आचार्य हैं। इस प्रकार से अवतार रहस्य के ज्ञाता महर्षिगण श्रीराम और परम यशस्विनी श्रीसीता जी को देखकर प्रसन्न हुए और श्रीराम जी के सान्निध्य को प्राप्त हुए।

ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ।

वे सब महर्षिगण उदय को प्राप्त चन्द्रमा की तरह धर्मचारी श्रीराम जी, श्रीलक्ष्मण जी और श्रीसीता जी को देखकर मंगल वचनों का प्रयोग करते हुए स्व सेव्यत्वेन श्रीराम जी को स्वीकार किये।

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।।२।।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ।

इन्द्रियों के विकार उपस्थित होने पर भी अविकृत रहने वाले वनवासियों ने भी श्रीराम जी के रूपसंहनन (समः सम विभक्तांगः, इस कथनानुसार अवयवों के संस्थान विशेष) लक्ष्मी (समुदाय शोभा), सौकुमार्य (पुष्पहास तुल्य कोमलता), सुवेषता (सुन्दर वेष) अथवा सुन्दर लावण्य (लावण्य का स्वरूप इस प्रकार बताया है कि —"मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते" अर्थात् मुक्ताफलों में छाया की तरलता जैसी बीच-बीच में प्रतिभासित होती है, वैसे ही अंगों से प्रतिभासित हो उसको लावण्य कहते हैं) को विस्मिताकार होकर देखा ।

निवेदयित्वा धर्मज्ञास्तेतु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।।३।।
धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः ।।४।।

धर्म जाननेवाले ऋषिगण श्रीराम जी को कन्दमूलादिक और अपने-अपने आश्रमों को निवेदन करके अर्थात् ये सब आपके

हैं, आप इनका यथेष्ट बिनियोग करें। ऐसा निवेदन करके, हाथ जोड़कर हे राघव ! आप वर्ण, आश्रमधर्म और परम धर्म के पालक हैं। इस जन के अर्थात् मर्त्य लोकस्थ जन के तथा ऊर्ध्व लोकस्थ जन के शरण्य हैं अथवा आर्त इस मुनिजन के शरण्य हैं, क्योंकि आप महायश अर्थात् समातिशय रहित यश वाले हैं। अतएव पूजनीय हैं। क्योंकि आप दण्डधर (खल निग्रहकर्त्ता) राजा हैं और आप सबके मान्य (सब प्रकार से सत्कार के योग्य हैं) क्योंकि आप गुरु हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं।

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥५॥

आर्त हम सब आप से ही रक्षणीय हैं, क्योंकि आप आर्त-जन रक्षण दीक्षित हैं। अतएव आप से रक्षा के योग्य हैं। (यदि आप कहें कि आप सब अपनी उपासना के बल से ऐसा कहते हैं सो नहीं) किन्तु आपके देश के रहनेवाले हैं। क्योंकि जो जिसके देश में रहता है, वह उससे रक्षित होता है। यदि आप कहें कि जब हम रक्षण प्रदेश में पहुँचेगें तब आप सबकी रक्षा करेंगे तो महर्षि उत्तर देते हैं कि आप नगरस्थ अयोध्या में सिंहासन पर बैठे हों, अथवा वनस्थ हों, अयोध्या के सिंहासन पर न भी बैठे हों, तो भी आप स्वतः सिद्ध सर्वशक्तिक और निरुपाधिक सर्वशेषी होने से सबके राजा हैं, सर्वरक्षक हैं; क्योंकि आप जनेश्वर हैं अर्थात् निरुपाधिक सर्वशेषी हैं। अर्थात् नगरवास तथा वनवास

से आपकी वृद्धि और ह्रास नहीं होता, सर्वावस्था में आप हमारे रक्षक हैं।

आप सब अपने-अपने तप के प्रभाव से अपनी-अपनी रक्षा कर लेने में समर्थ हैं। फिर हमसे क्यों प्रार्थना करते हैं? इसका उत्तर महर्षिगण देते हैं—

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधाजितेन्द्रियाः।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः ॥६॥

हे राजन् ! निरुपाधिक ऐश्वर्यशाली श्रीरामजी ! हमलोगों ने दण्ड का न्यास (त्याग) कर दिया है। अर्थात् शाप से निग्रह करना त्याग दिया है। क्योंकि क्रोध को जीत लिया है। ताप के नाश के भय से क्रोध नहीं करते हैं। तथापि हमसब जितेन्द्रिय हैं। इन्द्रियों को जीते हुए हैं। कामादि के अभाव से क्रोध होता हीं नही। वस्तुत: भयादि से युक्त हमलोग अपनी रक्षा अपने ही करते हैं तो अपने शेष स्वरूप के विरुद्ध होता है। अत: हमसब आप से ही रक्षणीय हैं, क्योंकि आप शेषी हैं, शेष पदार्थ शेषी से ही रक्षणीय होता है। क्योंकि हमसब आपके गर्भभूत हैं। जैसे माता गर्भस्थ बालक की रक्षा करती है, वैसे ही आप हमारी रक्षा करें। क्योंकि हमलोग तपोधन हैं। तप का अर्थ प्रपत्ति है। अर्थात् हमसब प्रपत्ति (शरणागति) रूप धनवाले हैं। अत-एव प्रसन्न हमसब की आप रक्षा करें।

एवं सिद्ध साधननिष्ठ मुमुक्षुओं को शरणागति का प्रति-पादन करके खर-दूषण वधार्थी मुनि जनों की शरणागति का प्रति-

पादन करते हुए शरण्यत्वोपयोगी सामर्थ्य का विरोध वध कथन द्वारा प्रतिपादन करके खरादि बध फलक शरभंगाश्रम वासी मुनि जनों की शरणागति दिखाते हुए सौलभ्य गुण का प्रदर्शन करने के लिए श्रीरामजी शरभग महर्षि के आश्रम में गये और उभय पक्षीय शिष्टजन मिलन, शिष्टाचार हो जाने के बाद श्रीरामजीने महर्षि शरभङ्गजी से कहा—

> अह ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः
> ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥७॥

हे नरव्याघ्र! निकट में ही (किन्तु मन में सदा ही सन्निहित) वर्तमान आपको (योगबल से) जानकर, प्रिय अतिथि आपको बिना देखे (आपके प्रत्यक्ष दर्शन के आनन्द को छोड़कर) ब्रह्मलोक को नहीं गया। तथा आपसे प्रार्थना है कि—

> अक्षया नरशार्दूल जिता लोकामया शुभाः।
> ब्राह्मायाश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥८॥

हे नरशार्दूल! ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक में होने वाले चिरकाल स्थायी जिन शुभ लोकों को मैंने उपार्जित किये हैं, उन मेरे लोकों को आप स्वीकार करें। अर्थात् हमारे किये हुए समस्त सुकृत अर्पित है। आप स्वीकार करें।

> एवमुक्तोनरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः।
> ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

शरभङ्ग ऋषि के ऐसा कहने पर सब शास्त्रों में प्रवीण नरों में श्रेष्ठ श्रीरामजी यह बचन बोले—

अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान् महामुने ।

हे महामुने श्रीशरभङ्गजी, आपने जो लोक मुझको समर्पित किये हैं, उन सभी लोकों को मैं स्वीकार करता हूँ ।

ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवित् ।।१०।।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविशेश हुताशनम् ।
तस्य रोमाणि केशांश्च तदावह्निर्महात्मनः ।।११।।
जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम् ।

श्रीरामजी के स्वीकार कर लेने पर मंत्रवेत्ता, अर्थात् ब्रह्मः-मेध के मंन्त्रों के जानने वाले श्रीशरभङ्गजीने अग्नि को परिस्तरण आदि से अलंकृत करके आज्य (घृत) से ब्रह्ममेध मन्त्रों से हवन करके अग्नि में प्रवेश किया तथा अग्नि ने महात्मा शरभंगजी के केश, जीर्ण त्वचा, हड्डी, मांस और खून को जला दिया ।

स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत ।।१२।।
उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभङ्गो व्यरोचत ।
स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां च महात्मनाम् ।।१३।।
देवानाञ्च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोक व्यरोहत ।

तदनन्तर शरभंगजी उस अग्नि के समुदाय से उठकर अग्नि के समान (तेजस्वी) कुमार हो गये, तथा सुशोभित हुए । महात्मा श्रीशरभंगजी ने आहिताग्नि (हवन आदि कर्मकाण्ड करने वालों के) लोक (पितृलोक) महात्मा ऋषियों के लोक (विद्या

देवलोकः=विद्या से देवलोक मिलता है) और देवताओं के अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के लोकों को अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक अर्थात् सच्चिदानन्दपुर श्रीसाकेत धाम प्राप्त किया। एतावता श्रीशरभंगजी ने "तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति" इत्यादि अर्चिरादि मार्ग से साकेत धाम को प्राप्त किया। १३१/२

श्रीराम जी ने सर्व राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा ऋषियों के सम्मुख की है। उनके वध के निदानरूपा शूर्पणखा के द्वारा उत्तेजित खर-दूषणादि चौदह हजार राक्षसों की सेना श्रीराम जी से संग्राम करने को आई। तब देवता, ऋषि-मुनियों एवं राज-षियों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि अकेले राम जी का चौदह हजार राक्षसों के साथ युद्ध कैसे होगा? उस समय श्री राम जी ने भी उनके आश्चर्य को दूर करने के लिए उस रूप को प्रकट किया कि जिससे चराचर त्रस्त हो गया यथा—

आविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम् ॥१४॥
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद् विव्यथिरे तदा।
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१५॥
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः।

तेज से (समान और अधिक रहित प्रताप से) आविष्ट (संयुक्त) संग्राम करने के लिये खड़े श्रीराम जी को देखकर समस्त प्राणी वर्ग भय से व्यथित हो गये। श्रीराम जी का कर्म किसी को भी खेद देने वाला नहीं है। इसीलिये श्रीराम अक्लिष्टकर्मा कहलाते हैं। उन श्रीराम जी का रूप (सौन्दर्य) उपमा रहित

भी है। तथापि (उस समय) क्रोधित महात्मा रुद्र के रूप के समान भयंकर रूप हो गया। खर-दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों के वध हो जाने पर अकम्पन नामक राक्षसों के वध का समाचार रावण से कहा, तथा श्रीराम जी के बलपराक्रम का वर्णन रावण से करता है कि —

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः ॥१६॥
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः।
सतारग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् ॥१७॥
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम्।
भित्वा वेला समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः ॥१८॥
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः।
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः ॥१९॥
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः।
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ॥२०॥
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव।
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैः देवासुरैरपि ॥२१॥

महाकीर्तिशाली श्रीराम जी किसी के विक्रम (बलपौरुष) से असाध्य हैं, अर्थात् कोई भी उन्हें जीत नहीं सकता और कुपित हुए श्रीराम जी जल से परिपूर्ण नदी के वेग को अपने बाणों से विपरीत प्रवाह कर सकते हैं। तारागण, ग्रह-नक्षत्रों के समेत आकाश को विशीर्ण कर सकते हैं। श्रीराम जी समुद्र में डूबती हुई पृथिवी का उद्धार कर सकते हैं। समुद्र की मर्यादा का भेदन

करके प्रलय काल की तरह सब लोकों को प्लावित (जल-निमग्न) कर सकते हैं। क्योंकि वे विभु (सर्वसामर्थ्यवाले) हैं। समुद्र के वेग और वायु को अपने वाणों से जला सकते हैं। महायशस्वी श्रीराम अपने पराक्रम से सब लोकों का सहार कर सकते हैं। वे पुनः सृष्टि करने में समर्थ हैं तथा सब प्रजाओं का संहार कर पुनः उत्पन्न करने में भी समर्थ हैं। अतः हे दशग्रीव रावण, आप संग्राम में राम को जीत नहीं सकते, यदि आप राक्षसों के समूह से युक्त होकर जीतना चाहें तथापि नहीं जीत सकते हैं। जैसे पापी पुरुष स्वर्ग को नहीं जीत सकता (श्रीराम जी केवल आप ही से अजेय नहीं हैं किन्तु) देवों और असुरों से भी अवध्य हैं। ऐसा मैं मानता हूँ।

अकम्पन के द्वारा जनस्थानीय राक्षसों के बध को सुनकर रावण मारीच के यहाँ गया। मारीच ने रावण को समझाकर लौटा दिया। तदनन्तर शूर्पणखा ने रोकर और फटकार कर जब अपनी दशा कही तब रावण क्रुद्ध होकर पुनः मारीच के यहाँ गया और कहा कि राम की भार्या श्रीजानकी के हरण करने में मेरी सहायता करो। तब मारीच कहता है कि —

अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा ।
(न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने) ।।२२।।
तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ।।२३।।

श्री जानकी जी जिनकी हैं, उनका तेज अप्रमेय (अपरि-

(छत्र) है। इससे श्रीसीता जी के सम्बन्ध में श्रीराम जी की अतिशयता कही गई। वन में भी जहाँ सावधानता से रक्षा की जाती है वहाँ भी श्रीराम जी के धनुष की आश्रिता श्रीजानकी जी का हरण करने में तुम समर्थ नहीं हो। इससे श्रीराम जी का वैभव कहा। जनकात्मजा कहने से जानकी जी के कुल प्रभाव से भी हरण करने योग्य नहीं हैं। सिंह के समान छाती वाले नरसिंह श्रीराम जी की नित्य अनुवर्तन करने वाली भामिनी (अतिप्रकाश युक्ता) भार्या श्रीसीता जी प्राणों से भी प्यारी हैं। यहाँ नित्यमनुव्रता कहने से श्रीजानकी जी को श्रीराम जी की नित्य शक्ति सूचित किया।

श्रीजानकी जी को खोजते हुए श्रीराम जी मार्ग में श्रीसीता जी के और रावण के पैरों के चिह्न तथा श्री जटायु के द्वारा भग्न (तोड़े हुए रावण के कवच-धनुष आदि को देखा और वन में गोदावरी, पर्वत, वृक्ष, लता आदि से पूछने पर भी किसी ने भी जब यह नहीं कहा कि हमने श्रीसीता जी को देखा है, तब श्रीराम जी अत्यन्त कुपित हुए और समस्त लोकों को भस्म करने के लिये धनुष पर बाण चढ़ाने लगे। यह देखकर अनुनय विनय करते हुए श्रीलक्ष्मण जी ने कहा कि—

दिव्यं च मानुषं चैवात्मनश्च पराक्रमम्।
इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥२४॥

हे इक्ष्वाकुवृषभ (इक्ष्वाकुवंश में श्रेष्ठ) श्रीराम जी, दिव्य अर्थात स्वर्गीय प्राणी देव, गन्धर्व आदिक सात्विक होने के कारण

वध के योग्य नहीं हैं तथा मानुष (मनुष्य लोक में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणादिक) भी वध के योग्य नहीं हैं। अतः आप सर्व लोक संहार समर्थ अपने पराक्रम को विचार कर केवल शत्रुओं के ही वध करने का यत्न करें (सर्वलोकों के वध का उद्योग न करें)। श्रीलक्ष्मण जी के सुभाषित वचन को सारग्राही श्रीराम जी ने ग्रहण किया और आगे जाकर जटायु से मिले। उन्होंने सब वृत्तान्त निवेदन करके प्राणत्याग किया। श्रीराम जी जटायु की अन्त्येष्टि-क्रिया आदि करके क्रौंच वन में अपोमुखी राक्षसी के नाक-कान काटे। तदनन्तर कबन्ध को मार कर श्रीशवरी जी के आश्रम में गये। शवरी जी ने श्रीराम जी का सम्यक् पूजन किया और समस्त आश्रमों को दिखाया तथा गुरुओं का वृत्तान्त निवेदन किया और यह हार्दिक भाव व्यक्त किया कि मैं गुरुओं के पास जाना चाहती हूँ जिनकी मैंने बहुत काल तक सेवा की है। तब शवरी जी के धार्मिक वचन को सुनकर श्रीराम जी ने —

तामुवाच ततो रामः शवरीं संशितव्रताम् ।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छकामं यथासुखम् ॥२५॥
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ।
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम सा ॥२६॥

प्रसाशित व्रत वाली (आचार्यपरिचर्यानिष्ठा) शवरी जी से कहा कि हे भद्रे, तुमने हमारी सम्यक् पूजा कर ली है। अतः तुम सुखपूर्वकयथाकाम (यथाभिलषित लोक) को जाओ।

इस प्रकार श्रीराम जी की आज्ञा प्राप्त करके श्रीशवरी जी अपनी आत्मा (देह) को अग्नि में हवन करके, जलती हुई अग्नि के समान रूपवती होकर स्वर्ग में गई। अथात् अक्षय लोक श्री राम धाम साकेतपुरी को गई। क्योंकि आचार्यों ने शवरी जी को आज्ञा दी थी कि जब तक श्रीराम जी न आवें तब तक इस आश्रम में वास करो, पश्चात् रामजी के आने पर उनका दर्शन पूजन आदि करके, "तं च दृष्ट्वा वरांल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि" अक्षय लोकों को जओगी। इति शुभम्

इति श्रीललित कशोरीशरण संगृहीतायां

वाल्मीकीयकाव्योपनिषदि,

आरण्यकाण्डं

समाप्तम्

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

।। श्रीहनुमते नमः ।।

❀ श्रीवाल्मीकये नमः ❀

श्रीवाल्मीकिरामायणोपनिषदः

।। किष्किन्धाकाण्डम् ।।

श्रीशवरी जी के यहाँ से श्रीराम जी पम्पासरोवर आये और ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले श्रीसुग्रीव जी ने पम्पासरोवर के किनारे विचरते हुए श्रीरामजी को देखा और वे भयभीत हो गये। वे अनेक प्रकार की शंका करने लग गये तथा अपने सचिवों से कहा कि ये दोनों वीर निश्चय ही बालि के भेजे हैं, मेरी तरफ आ रहे हैं। ऐसा कहकर सुग्रीवजी मिन्त्रयों के साथ दूसरे शिखर पर जा बैठे। श्रीहनुमानजी ने सुग्रीव से भय का कारण पूछा। सुग्रीव जी ने श्रीराम जी, लक्ष्मण जी की तरफ इशारा करते हुए कहा कि धनुष-बाण धारण किये हुए इन दोनों वीरों को देखकर किसको भय नहीं होगा। निश्चय ही ये बालि

के भेजे हुए हैं। आप स्वाभाविक वेष से उनके पास जाकर बातचीत के द्वारा उनके हृदय के भाव का पता लगाइये कि वे शुद्ध भाव के हैं या दुष्ट भाव के हैं। सुग्रीव के वचन को सुनकर हनुमान् जी ऋष्यमूक पर्वत से कूद कर श्रीराम जी के पास आये और श्रीराम लक्ष्मण जी से पूछने लगे—

धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ।
सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ ॥१॥

सिंह के समान दीखने वाले, महाबल पराक्रमशाली, चीर धारण किये सुवर्ण के समान आभावाले अर्थात् द्रुत (पिघला) सुवर्ण श्याम प्रतीत होता है; अद्रुत (न पिघला हुआ) पीत वर्ण का होता है। अतः दोनो को सुवर्णाभ कहा गया। अथवा यद्यपि श्रीराम जी श्याम वर्ण हैं और लक्ष्मण जी गौर वर्ण हैं। "तथापि छत्रिणो यन्ति" इस न्याय से दोनों को गौर ही कहा। अथवा सुवर्ण (सुन्दर वर्ण) और आभा (सुन्दर कान्ति) वाले परम धैर्य वाले वीर आप दोनों कौन हैं? (सुवर्णाभ कहने से हिरण्यकेशो हिरण्य) इस प्रश्न पर लक्ष्मण जी ने अपना परिचय देते हुए कहा—

लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति।
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा ॥२॥
गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीव शरणं गतः।
यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः ॥३॥
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते।

हे प्लवंगम वानरराज बालि जी ! धर्म सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) है। सज्जनों को भी परम दुर्ज्ञेय (जानने में अत्यन्त अशक्य) है। फिर आपके समान जन तो क्या जान सकेंगे। अथवा जन के किये हुए धर्माधर्म कोई नहीं जान सकता। आत्मा (परमात्मा) सब भूतों के शुभ और अशुभ कर्मों को जानता है अर्थात् सूक्ष्म धर्म को परमात्मा यानी मुझको छोड़कर दूसरा कौन जानने में समर्थ है ? इससे श्रीरामजी ने अपनेको सर्वान्तिर्यामी और सर्वज्ञ द्योतित किया। बालि के मरण को सुनकर तारा विलाप करती हुई बालि के पास आई और बड़ा बिलाप करने लगी। उसको समझाने के लिये जब श्रीराम जी उसके पास गये और उसने श्रीराम जी को देखा और पहिचाना, तब उसने श्रीराम जी से कहा—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जतेन्द्रियश्चोत्तमधर्मीकश्च ॥५॥
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्चक्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः
मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः ॥६॥

हे श्रीराम जी आप अप्रमेय हैं, अर्थात् देव भी आपको इदमित्थं नहीं जान सकते, अथवा "सोऽङ्ग वेद यदि वा न वेद" इस श्रुति वाक्य से आप स्वयं अपने को परिच्छिन्न करके नहीं जान सकते। एतावता आप अन्तः करण से दुष्पाप हैं, तथा बाह्य कारणों से दुष्प्राप्त हैं। क्योंकि दुरासद हैं। सन्मार्ग के बिना पथभ्रष्ट को दुष्प्राप्य हैं। दुरासद पद में षद्लृ धातु विशरण-गति-अवसादन अर्थ में है। अतः आप नित्य होने से विशरण (नाश के योग्य नहीं) हैं। विभु (व्यापक) होने से चलने योग्य

नहीं, नित्य आनन्दरूप होने से कभी दुःख के योग्य नहीं हैं। अप्रमेय दुरासद होने पर भी परदार, परराज्य-ग्रहण लोभी नहीं हैं। क्योंकि जितेन्द्रिय हैं। आप इन्द्रियों को जीते हुए हैं। कोई पुरुष किसी स्त्री को देखकर उसकी सुन्दरता का वर्णन करने लग जाता है। पर आप वैसा नहीं करते हैं। "न रामः परदारान् वै चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।" आप उत्तम धार्मिक हैं। अर्थात् पुरुषोत्तम धर्मवाले हैं। अथवा सब समय अधर्म संसर्ग शून्य अति श्रेष्ठ धर्म आप में है। तात्पर्य यह है कि पहले मैंने यह समझा था कि विरक्त होते हुए भी आपने बालि की हिंसा की। अतः आप अधार्मिक हैं; परन्तु अब जाना कि स्वाश्रित सुग्रीव के संरक्षणार्थ ही आपने ऐसा व्यापार किया है। इससे आप परम धार्मिक हैं। क्योंकि अपने लिये कर्म करनेवाला अधम धार्मिक है। अपने और दूसरों के लिये कर्म करनेवाला मध्यम धार्मिक है तथा दूसरों के लिये केवल कर्म करने वाला उत्तम धार्मिक कहा जाता है। बालि वध रूप कर्म आपने अपने लिये नहीं किया किन्तु शरणागत सुग्रीव के लिये किया। अतः आप उत्तम धार्मिक एवं अक्षीण कीर्त्ति हैं। अर्थात् आप की कीर्त्ति कभी क्षीण नहीं होती, क्योंकि "यस्य नाम महद्यशः" जिसका नाम और यश महान है। इस श्रुति से आप परत्व प्रथा से युक्त होनेपर आपकी कीर्त्ति कभी क्षीण नहीं होती। दूर दृष्टि होने से सब कामों को युक्तायुक्त विचार कर ही करते हैं। अतः आप विचक्षण हैं और क्षिति क्षमावान्, पंचाशत्कोटि विस्तीर्ण

पृथिवी में जितनी क्षमा है, उतनी आप अकेले में ही है। क्षतजोपमाक्षः—बालि के विषय में अधिक कोप होने से आपके अरुण नयन हैं। मनुष्यदेहाभ्युदयं = मनुष्य लोकवर्ती देहों से प्राप्त होनेवाले अभ्युदय (सुख) को त्याग कर दिव्य देह से प्रप्त होने योग्य अभ्युदय से युक्त हैं। अर्थात् मनुष्यलोकीय सुखों का त्यागकर दिव्यदेहीय सुखों से आप सम्पन्न हैं। दिव्यदेह सौभाग्य से युक्त हैं।' इस प्रकार से तारा ने श्रीराम जी के दिव्य वैभव का अनुभव करते हुए वर्णन किया।

जब श्रीराम जी ने बालि को मार कर सुग्रीव जी को वानरराज बनाया और अंगद को युवराज बना दिया और स्वयं प्रवर्षण पर्वत पर चतुर्मासा किये। सुग्रीवजी राज्य-सुख में इतने लिप्त हो गये कि चार महीनों के भीतर एक बार भी नहीं आये। अर्थात् चतुर्मासा व्यतीत होने पर भी जब नहीं आये, तब श्रीरामजी ने लक्ष्मण को भेजा। लक्ष्मण जी बड़े क्रुद्ध होकर गये। किष्किन्धा में क्रुद्ध लक्ष्मण जी के आने का समाचार सुग्रीव से कई बानरों ने तथा अंगद ने भी कहा, परन्तु सुग्रीव ने कुछ नहीं सुना। अन्त में अर्थमंत्री प्लक्ष जी और धर्ममंत्री श्रीप्रभाव ने सुग्रीव से ऊँची-नीची बात कहते हुए लक्ष्मण जी की प्रशंसा की और सुग्रीव को प्रसन्न करके कहा—

सत्यसन्धौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
मनुष्यभावं संप्राप्तौ राज्यार्हौ राज्यदायिनौ ॥७॥

दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण जी महाभाग्यशाली हैं और सत्यप्रतिज्ञ हैं। मनुष्य भाव को प्राप्त हैं। वस्तुतः वे मनुष्य नहीं हैं

और राज्य के योग्य हैं। त्रैलोक्य के राज्य करने योग्य हैं तथा आपको राज्य देनेवाले हैं। उनमें से एक लक्ष्मण जी आये हैं।

श्रीलक्ष्मण जी के क्रोध को समन करने के लिये सुग्रीव जी ने तारा को भेजा। तारा ने अपनी वचन चातुरी से लक्ष्मण का क्रोध जब शान्त कर दिया, तब सुग्रीवजी ने निर्भय होकर लक्ष्मण से इस प्रकार कहा—

क: शक्तस्तस्यदेवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अशेनापि नृपात्मज ॥८॥

अपने कर्म---शवधनुर्भंग, विराध, खर-दूषण, कवन्ध आद के बध करने से प्रसिद्ध देव (देवावतार वा नित्यानन्द स्वरूप) श्रीराम जी के कर्म के सदृश कर्म अर्थात् श्रीरामजी ने जैसा उपकार किया है वैसा क्या कोई समर्थ कर सकता है। अपितु नहीं कर सकता है।

इति श्रीललितकिशोरीशरण संगृहीत
बाल्मीकीयरामायणोपनषदि
॥ किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ॥
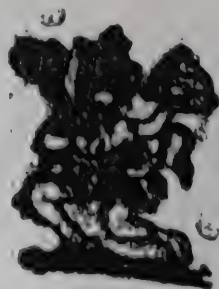
* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

* श्रीहनुमते नमः *

।। श्रीवाल्मीकये नमः ।।

श्रीवाल्मीकिरामायणकाव्योपनिषदः

।। सुन्दरकाण्डम् ।।

श्री हनुमान जी ने समस्त लंका नगरी में अन्वेषण करके अशोकवाटिका में श्रीसीता जी के दर्शन कर, बड़े शोच मग्न हो गये। उसी समय राक्षसियों के साथ लंकापति रावण भी वहाँ आ गया। उसने सीता जी को बहुत प्रलोभन दिया, तथा प्रार्थना की कि हे सीते, तुम मेरे साथ सर्वत्र विहार करो। तब श्रीसीताजी ने दृढ़ता के साथ उसको फटकारा और कहा—

अनन्या राघवेनाहं भास्करेण प्रभा यथा ।।१।।

मैं नित्य अनपायिनी रघुकुलावतीर्ण श्रीरामजी की अनन्या अविभक्ता हूँ, जहाँ-जहाँ श्रीरामजी अवतीर्ण होते हैं, वहाँ-वहाँ मैं भी अवतीर्ण होती हूँ। तृतीया विभक्ति से अपने को श्रीरामजी का परतंत्र बताया। मैं केवल श्रीरामजी की परतंत्र हीं नहीं हूँ। बल्कि श्रीरामजी का अतशय भी करने वाली हूँ। जैसे, प्रभा

भास्कर का अतिशय करती है, वैसे ही मैं भी श्रीरामजी का अतिशय करती हूँ। यही बात मारीचने भी "अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा" इस वचन से कहा था, क्या उस वचन को मोह में पड़कर तूने भुला दिया। उसने यथार्थ कहा था।

पुन: श्रीजानकी जी ने रावण से कहा—

असदेशात् तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वं कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥३॥

श्रीराम जी की जलाने के विषय में आज्ञा न होने के कारण और शाप से भस्म करने में समर्थ होती हुई भी, तपस्या का अनुपालन कर रही हूँ (शाप देने से तपस्या खण्डित हो जाती है)। अतः भस्म करने योग्य अपने पातिव्रत रूप तेज से तुमको भस्म नहीं कर डालती हूँ। मैं बुद्धि सम्पन्न श्रीरामचन्द्र की भार्या हूँ। तुम मेरा हरण नहीं कर सकते थे। तथापि तुम्हारे मारने के लिये मेरा अपहरण रूप विधान किया गया है। इसमें सन्देह नहीं।

श्रीसीताजी को वश में करने के लिये राक्षसियों को नियुक्त करके जब रावण चला गया, तब राक्षसियों ने श्रीसीताजी से बहुत कुछ अवाच्य वचन कहे। त्रिजटा ने राक्षसियों को अपना स्वप्न सुनाया। तदनन्तर सब राक्षसियाँ वहाँ से हट गईं। तब

हनुमान्‌जी श्रीसीताजी से मिले, अपना परिचय दिया। लेकिन श्रीसीताजीको सन्देह हुआ कि वानर वेषमें यह रावण ही है। संदेह दूर करने के लिये श्रीजानकीजी ने श्रीरामजी का चिह्न पूछा। तब हनुमान्‌जी श्रीरामजी के चिह्नों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः॥ ४॥
रामो भामिनी लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः॥ ५॥

"जीवन्वि जीवयन्ति" इन दो व्युत्पत्तियों से जीव शब्द जीव और ईश्वर का ग्राहक है, लोक शब्द भुवन वाचक है। अतः श्रीरामजी जीव, ईश्वर और समस्त भुवनों (निखिल ब्रह्माण्डों) की रक्षा करने वाले हैं, तथा अपने जनों के रक्षक हैं। शत्रुओं को तपाने वाले श्रीरामजी अपने वृत्त (आचार) और धर्म) की रक्षा करने वाले हैं। हे भामिनी श्रीजानकीजी, चारो वर्णों के जीवों की श्रीरामजी साक्षात् और विष्णु आदि के द्वारा रक्षा करते हैं। तथा लोक के वर्णाश्रम की मर्यादाओं के कर्त्ता हैं और काल रूप से मर्यादाओं को करवाते भी हैं।

श्रीहनुमान्‌जी श्रीजानकीजी से बातचीत करके श्रीरामजी के चिह्न लेकर विदा हुए और रावण की बल-बुद्धि को जानने के लिये अशोकवाटिका को नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। तब रावण ने हनुमान्‌जी को पकड़ने के लिये प्रथम बार ८०००० (अस्सी हजार) राक्षस; द्वितीय बार सेना समेत प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली,

तृतीय बार सेना समेत सात मंत्रिपुत्र, चतुर्थ बार सेना समेत विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रधंस, भासकर्ण नामक पाँच सेनापतियों को, पाँचवीं बार अक्षय कुमार को सेना समेत मार गिराया। तदनन्तर छट्ठी बार रावण ने मेघनाद को भेजा, वह ब्रह्मास्त्र से हनुमान्‌जी को बाँध रावण की सभा में ले गया। सभा में श्री हनुमान्‌जी ने रावण से बातचीत की और बहुत कुछ समझाया। अन्त में कहा कि—

यं सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलंकाविनाशिनीम् ॥६॥

जिनको तुम श्रीसीता जानते हो, जो सम्प्रति तुम्हारे घर में स्थित हैं, उनको तुम सम्पूर्ण लंका को नाश करने वाली कालरात्रि जानो। महाप्रलय करनेवाले भगवान् की शक्ति को कालरात्रि कहते हैं।

श्रीजानकी जी के प्रभाव को कहकर हनुमान जी श्रीराम जी के प्रभाव का वर्णन करते हैं—

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥७॥

श्रीराम जी पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश रूप पंच महाभूतों के सहित तथा ब्रह्मा जी के द्वारा उत्पन्न किये गये स्थावर, जंगम रूप प्राणियों के समेत सभी भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य आदि लोकों का संहार करके पुनः सृष्टि करने में समर्थ हैं। क्योंकि

श्रीराम जी का "न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः" इस श्रुति से महायश, श्रुति स्मृति प्रसिद्ध ही माना गया है।

ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा,
रुद्रास्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रा महेन्द्रः सुरनायको वा,
त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥८॥

इस मन्त्र में ब्रह्मा, शिव और इन्द्र दो-दो विशेषण जो दिये गये हैं, वे विशेषण उनकी सामर्थ्य विशेष का द्योतन करते हैं। अपने तुल्य तैंतीस कोटि देवगणों का नायक, वृत्र हनन प्रसिद्ध सामर्थ्य विशिष्ट परमैश्वर्यवान् इन्द्र भी रक्षा नहीं कर सकता तथा प्रबलतर महा असुर त्रिपुर का संहार करनेवाले तीन नेत्रयुक्त तीसरे नेत्र की अग्नि-ज्वाला से देखकर काम को जलाने की सामर्थ्य वाले और संहार काल में प्रजा को रुलाने वाले रुद्र भी रक्षा नहीं कर सकते। चार मुख वाले स्वयंभू श्रीब्रह्मा जी भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते; तथा संग्राम में श्रीराम जी के बध्य तीनों मिल कर भी नहीं कर सकते। किन्तु शरणगति करके तो रक्षा कर सकते हैं। इस मन्त्र से श्रीहनुमान् जी ने श्रीराम जी का परात्परत्व प्रदिपादन किया। रावण की आज्ञा से हनुमान्जी की पूँछ में आग लगा दी और सारी लंका में घुमाया गया। श्रीहनुमान्जी ने अपनी पूँछ में जलती हुई आग को देखकर विचार किया कि आग जल रही है, पर हमें ज्वलन नहीं होता, हमारी पूँछमें शीतल जैसा प्रतीत होता है, इसका क्या कारण है—

अथवा तदिदं व्यक्तं यद्दृष्टं प्लवता मया ।
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ॥ ९ ॥

समुद्र लाँघते समय नदीपति समुद्र में पर्वतरूप आश्चर्यमय अद्भुत वस्तु जैसे मैंने देखी थी वैसे ही इस समय भी अग्नि में शीतलतारूप महाश्चर्य कार्य श्रीरामजी के प्रभाव से हो गया है क्या ?

यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः ।
रामार्थं सम्भ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ॥ १० ॥

यदि कहें कि समुद्र की प्रेरणा से मैनाक ने उठकर वैसा आदर किया था, अग्नि का तो स्वभाव के विपरीत कैसे हुआ, उसपर कहते हैं कि श्रीरामजी के लिये जब समुद्र और बुद्धिमान मैनाक की वैसी संभ्रम-आदर पूर्वक त्वरा हुई तो श्रीरामजी से नित्य उपासित अग्निदेव श्रीरामजी के उपकार के लिये शीतलता क्यों नहीं देते ?

लंका को जलते देखकर हनुमान्‌जी सोचने लगे कि मैंने अनर्थ कर दिया । क्योंकि लंका को जलाते समय मैंने श्रीसीताजी की रक्षा नहीं की । वह अवश्य ही जल गई होगी । क्योंकि लंका में कोई भी स्थान अग्नि से बचा नहीं है । मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ । सर्वलोक का ही मैंने नाश कर डाला । अथवा—

अथवा चारुसर्वांगी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ ११ ॥
नहि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः ।
स्वचरित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥ १२ ॥

अथवा सर्वाङ्ग सुन्दरी श्रीसीताजी अपने ही तेज से रक्षित हैं। वे कल्याणी अग्नि के द्वारा नाश नहीं हो सकतीं। क्योंकि अग्नि में अग्नि नहीं लगती। अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामजी की भार्या श्रीजानकीजी को जो अपने पातिव्रत रूप चरित्र से रक्षित हैं, उन श्रीसीताजी को अग्नि स्पर्श भी नहीं कर सकती।

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ १३ ॥

तप के बल से, सत्य वचन के प्रभाव से तथा पति में अनन्यता (पातिव्रत) के प्रभाव से श्रीजानकीजी अग्नि को ही जला देंगी। उनको अग्नि नहीं जला सकेगी।

इति श्रीललितकिशोरी शरण संग्रहीत
वाल्मीकि रामायणोपनिषदि
सुन्दरकाण्डम् समाप्तम्

* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

॥ * ॥ श्रीहनुमते नमः, श्रीवाल्मीकये नमः ॥ * ॥

श्रीवाल्मीकिरामायणोपनिषदो

॥ युद्धकाण्डम् ॥

श्रीविदेह राजकुमारी जू का पता लगाकर श्रीहनुमान जी श्रीराम जी के समीप प्रवर्षण पर्वत पर आये और श्रीजानकी जी के समाचार सुनायें। जिस समाचार को सुनकर श्रीरामजी शोक-मग्न हो गये। तब सुग्रीव ने समझाया और कहा कि समुद्र पार जाने के लिये हम सबके साथ विचार कीजिये, यदि हमसब किसी प्रकार समुद्र पार कर गये तो आप निश्चय समझें कि शत्रु को जीत लिया। अधिक क्या कहें। आप सर्वथा विजयी हैं, ऐसा निमित्त भी मैं देख रहा हूँ। सुग्रीब के वचन सुनकर श्रीराम जी ने कहा—

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन च।
सर्वथापि समर्थोऽस्मि सागरस्यास्यलङ्घने ॥१॥

कि तपके प्रभाव से अर्थात् तपःकार्य संकल्प सिद्धि से, या गंगा में जैसे गांगेय ने वाणों से सेतु बाँधा था वैसे ही मैं वाणों से समुद्र पर सेतु बाँधकर, अथवा दिव्यास्त्र बल से समुद्र को सुखाकर सर्वथा ही इस समुद्र को लाँघने में मैं समर्थ हूँ।

लंका में श्रीविभीषण जी ने रावण को बहुत समझाया, परन्तु रावण ने कुछ नहीं सुना, न माना, प्रत्युत उसने विभीषण का अपमान किया। अपमानित होकर विभीषण जी लंका को त्याग कर चार मंत्रियों के समेत समुद्र के उत्तर तट पर आकाश में स्थित होकर सुग्रीव आदि बानरों से निवेदन किया :—

निवेदयत मांक्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोक शरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥२॥

सर्वलोक शरण्य (शरण में आये हुए जीव के कुल, विधा आचार आदि को न देखकर समस्त लोक को शरण देने वाले) अर्थात् विविध प्रकार के अपराधों का संचय करने वाला रावण का भी आप सब की तरह से श्रीराम गोष्ठी में जब अंश है, फिर उसके सम्बन्धी की तो बात हीं क्या है। परन्तु रुचि के अभाव से रावण अपने अंश को नहीं पा सका, मैं तो सन्मुख आ गया हूं। अतः मेरे अंश को कोई छोड़ नहीं सकता। महात्मा (महान् आत्मा) । न तत्समश्चाभिकश्च दृश्यते = श्रीराम जी के समान वा अधिक कोई नहीं दीखता, ऐसा श्रुति तिपादन करती है। अतः अवतार काल में अपने स्वभाव को न त्यागने से हेय गुणों से रहित और ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि अनन्त कल्याण गुणों के आकार श्रीराघव जी के लिये निवेदयत निवेदन कीजिये। यहाँ विभीषण जी का आना प्रत्यक्ष सामने हीं है, निवेदन करने का कोई प्रयोजन नहीं है तथापि निवेदन जो किया उसका कई प्रयोजन है। यथा—मैं सम्पूर्ण अपराधों से भरा हुआ हूँ, ऐहिक

और पारलौकिक फल भोग का विराग है; शरणागति लक्षण निरपाय उपाय का परिग्रह किया हूं श्रीराम जी के कैङ्कर्य की अभिलाषा है, श्रीराम जी के परिकरों में अपने को सम्मिलित करना चाहता हूँ, आदि-आदि प्रयोजन विज्ञापनीय हैं। क्षिप्रं जल्दी से निवेदन करें, अर्थात् जब तक शरण्य श्रीराम जी स्वयं ही परिग्रह करेगें उसके प्रथम ही बिज्ञापन करके आप लोग सुहृत कार्य का आचरण कर दें। विभीषणं = विभीषण अर्थात् मैं रावण की तरह प्रतिकूल नहीं हूँ। किन्तु "विभीषणस्तु धर्मात्मा, इस वचन से मैं अनुकूल हूं। उपस्थितम् = अतिहीन भी व्यक्ति के आना मात्र श्रीराम जी के अंगीकार में बीज है, यह भाव है।

श्रीविभीषण जी के वचन को सुनकर श्रीसुग्रीव जी ने लक्ष्मण जी के सन्मुख श्रीराम जी से कहा कि आप सावधान रहिये यह रावण का गुप्तचर है, हम लोगों में प्रबेश कर कोई न कोई अनर्थ अवश्य करेगा। अतः मंत्रियों के समेत वध कर देना चाहिये। क्योंकि रावण का भाई है, इस पर श्रीराम जी ने सब मंत्रियों से परामर्श लिया, सब ने अपने-अपने विचारानुसार परामर्श दिया, श्रीहनुमान जी ने हीं केवल विभीषण को स्वीकार करने का परामर्श दिया। हनुमान जी के परामर्श का श्रीराम जी ने समर्थन किया और कहा कि जो मित्रभाव से मेरे यहाँ आता है, उसका मैं त्याग नहीं करता। तदनन्तर सुग्रीब ने कहा कि आप इससे सहायता की आशा करके इसको शरण देना चाहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि ऐसी आपत्ति के समय जब अपने भाई को छोड़ आया तो यह आपको

भी त्याग कर देगा। इसका उत्तर जब श्रीराम जी ने दिया तो सुग्रीव जी लक्ष्मण जी को भी साथ में लेकर कहने लगे कि यह निश्चय ही रावण का भेजा हुआ है, इसका निग्रह करना ही योग्य है। विश्वास कर लेने पर आप के ऊपर या लक्ष्मण जी पर अथवा हमारे ऊपर प्रहार करेगा। अतः मंत्रियों के समेत इसका वध करना चाहिये। तब श्रीराम जी ने कहा कि :—

सुदुष्टोवाप्य दुष्टो वा किमेष रजनीचरः।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथचनः ॥३॥
पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥४॥

यह रजनीचर विभीषण अच्छी तरह से दुष्ट हो अथवा दुष्ट न हो, किसी प्रकार से भी मेरा थोड़ा भी अहित नहीं कर सकता। पृथ्वी पर विद्यमान पिशाच, दानब, यक्ष और राक्षसों को, हे हरिगणेश्वर बानर राज श्रीसुग्रीव जी आप आपने समस्त बानरों के साथ यहाँ हीं रुकें, मैं अकेला हीं समस्त राक्षसों के लिये अंगुली के अग्रभाग से, शस्त्र अस्त्र के सहारा के बिना दूसरी अगुलियों के भी सहारा के बिना एक अंगुली में भी सम्पूर्ण अगुली के व्यापार के बिना केवल एक अंगुली के अग्र भाग मात्र से मारने में समर्थ हूँ, न केवल लंकावासी ही राक्षसों को किन्तु पृथ्वी में वास करने बाले समस्त राक्षसों को—उसमें भी केवल एक जीब की ही हीं किन्तु सर्वा जातीय राक्षसों को मार सकता हूँ। तब लंका-वासियों को क्यों नहीं मार देते? इस पर कहते हैं कि इच्छन् =

इच्छा करे तो मार सकता हूं, इच्छा के अभाव से हीं राक्षसों के वध का अभाव है शक्ति के अभाव से नहीं।

श्रीविभीषण जी को शरण में लेने के लिये श्रीराम जी ने "श्रुति : स्मृति : सदाचार : स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक् सकल्पज : कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्" याज्ञवल्कोक्त धर्म के प्रमाणों में "वध्यं प्रसन्नं न प्रतिमच्छन्ति" (बध्य भी प्रपन्न को नहीं मारते) इससे श्रुति, कण्डुगाथा के द्वारा स्मृति, कपोत कथा के द्वारा शिष्टाचार और सब के मत का खण्ढन करके अपने मत का वलपूर्वक उपपादन करने से स्वप्रियत्व दिखाया, इस प्रकार धर्म के विषय में चार प्रमाण दिखाकर "सम्पक् संकल्पजः कामः" इस पञ्चम प्रमाण को दिखाते हैं।—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥५॥

सकृदेव—एकबार हीं अन्यउपायों में निरंतर आबृत्ति का विधान शास्त्र करता है और शरणागति "सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरम्) एकवार हीं की हुई मनुष्य को तार देती है। प्रपन्नाय = प्रपन्न के लिथे। यहां 'गत्यर्थाः ज्ञानार्थाः (गत्यर्थक धातु ज्ञानार्थक होता है) इस न्याय से प्रपन्नाय कह कर मानसिक प्रपत्ति कही गई। तवास्मि, इति कथ्यते = मैं आपका हूं, ऐसी याञ्चा करता हूं, यह कह कर बाचिकी प्रपत्ति कही, दोनों प्रकार की प्रपत्तियों से युक्त के लिये ऐसे अधिकारी के लिये सर्बभूतों से अर्थात् भयहेतु तया शंकित सर्बभूतों से अभय दे देता हूं। अभय

को हीं मोक्ष कहते हैं। क्योंकि ,'अथ सोऽभयं गतो भवति" "आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान न विभेति कुतश्चन" (वह अभय हो जाता हैं। ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से नहीं डरता) इस श्रुति से अभय को ब्रह्म विद्या का फल बताया गया है। यह मेरा व्रत है, किसी भी दशा में त्यागने के योग्य नहीं है। सर्व-भूतेभ्य:, यह चतुर्थी विभक्ति भी है, अतः प्रपन्न के सम्वन्धियों के लिये मी अभय दे देता हूं क्योंकि 'पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णव संश्रयाः। ते नैव ते प्रयास्वन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् (पशु, मनुष्य, पक्षी या जो भी कोई शरणागत का आश्रय लिये हैं, वह उसी शरणागत के साथ हीं भगवान् के धाम को जायगा, ऐसा शास्त्र कहता है।

श्रीराम जी ने सुग्रीव से कहा कि विभीषण को मैंने अभय दे दी, आप उनको ले आवें। तब विभीषण जी श्रीराम जी के सन्मुख आकर निबेदन करते हैं कि मैं रावण का भाई हूं और उसने हमरा अपमान किया है, इस लिये :—

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।
परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च ॥६॥

सर्व भूतों के शरण्य "रावण के भी हम शरण (रक्षक) हो जायगे ऐसा संकल्प किये हुए ज्ञान शक्ति वलैश्वर्यादि युक्त आपकी शरण में आया हूं। वासस्थान लंका, मित्र तथा धन अर्थात् मित्रों के द्वारा प्राप्त सोपाधिक सब बस्तुओं की मैंने परित्याग कर दिया है।

भवद्गतं च मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥६॥

राज्य (सर्वसंगत वस्तु) जीवित = धारक पोषक भोग्यादि वस्तु और सुख = इस लोक और परलोक के सुख मेरे आपके अधीन है अर्थात् मैं आपके कैंकर्य को छोड़कर और कुछ नहीं चाहता हूं। मेघनाद के द्वारा श्रीराम जी नागपाश में वधे हैं इस समाचार को सुनकर गरुड़ जी आये और नाग पास को नष्ट कर के श्रीराम जी से संभाषण करके चलने लगे तब :—

प्रदक्षिणं ततः कृत्वापरिष्वज्य च वार्यबान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ।।७।।

गरुड़ जी श्रीराम जी को प्रदक्षिणा करके तथा श्रीराम जी का आलिंगन करके वीर्यवान् गरुड़ जी पवन की तरह आकाश में प्रवेश करके चले गये। गरुड़ जी ने प्रदक्षिणा की इससे प्राकृत बानरों को भी यह निश्चित बोध हुआ कि श्रीरामजी दिव्यदेवतावतार हैं।

अकंपन, अतिकाय, कुम्भकरण आदि प्रवल राक्षसों के मारे जाने पर रावण ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद को लड़ने के लिये भेजा, मेघनाद अपनी यज्ञ भूमि में जाकर हवन किया और अन्तर्हित रथ को प्राप्तकर उस पर बैठकर अदर्शित होकर युद्ध करने लगा तब मेघनाद के द्वारा व्यथित बानरों को देखकर श्रीलक्ष्मणजी ब्राह्मास्त्र चलाने को तैयार हो गये, श्रीरामजी ने रोका और कहा कि ब्रह्मास्त्र से निरपराधिक भी मारे जायगे। अतः इसी को मारने का यत्न करते हैं। श्रीरामजी के भाव को समझकर वह भाग गया और सबको मोहित करने का उसने प्रयत्न किया,

सब मोहित भी हो गये। विभीषणजी के समझाने पर मोह दूर हुआ और श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि अब आप मेघनाद को मारें। तब धनुष वाण लेकर मेघनाद से लड़ने के लिये खूब युद्ध किया, अन्त में कहते हैं कि—

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥८॥

यदि दाशरथि श्रीरामजी धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ और पौरुष (वल) में अप्रतिद्वन्द्व (समाधिकरहित) हैं, तो हे वाण इस रावण पुत्र मेघनाद को मारो। (ऐसा कहकर लक्ष्मण ने कर्ण पर्यन्त धनुष खींचकर वाण मेघनाद के ऊपर चलाया।)

मेघनाद के मारे जाने पर रावण अवशेष सभी सेनापतियों को युद्ध करने को संग्राम में भेजा, उन्होंने ऐसा युद्ध किया कि सब वानरी सेना घवड़ा कर श्रीरामजी की शरण में गई। तब श्रीरामजी ने अपूर्व वाणों का संधान और फेकने की कुशलता से दिन के अष्टम भाग मात्र में दश हजार रथ, अठारह हजार हाथी, चौदह हजार सवार, दो लाख घोड़ों पर सवार राक्षसों को मारा। देवों ने श्रीरामजी को साधु-साधु कहकर उस कर्म की प्रशंसा की, श्रीरामजी सुग्रीव से कहते हैं :—

अब्रवीच्च तदारामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम्।
एतदस्त्र वलं भीम मम वाऽत्र्यम्वकस्यवा ।।९।।

समीप में स्थित सुग्रीवजी से श्रीरामजी ने कहा कि यह अस्त्रवल (अस्त्रप्रयोग की शक्ति) हमारी है अथवा संहार काल

में शिवजी की भी है। यहाँ अस्त्रवल से अस्त्र प्रयोग शक्ति ही ग्राह्य है, अस्त्र नहीं क्योंकि "गान्धर्वेण च गान्धर्वम्" इस कथन से गान्धर्व अस्त्र रावण के पास भी था।

रावण वध के वाद रावण की ज्येष्ठ पत्नी मन्दोदरी ने विलाप करते हुए कहा कि :—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्॥१०॥
तमसः परमो धाता शंखचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः॥११॥
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः॥१२॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानांहितकाम्यया।
स राक्षस परिवारं देवशत्रुं भयावहम्॥१३॥

ये श्रीरामजी महायोगी (लोक रक्षण के उपाय की चिन्ता वाले, परम आत्मा (सर्वोत्कृष्ट) हैं क्योंकि सनातन = सदा अस्तित्व से युक्त हैं, अनादि मध्य निधन (जन्म वृद्धि विनाश शून्य हैं। महान् से भी परे महान् हैं। अर्थात् महान् = इन्द्रादि उससे महान् ब्रह्मादि, ब्रह्मादिकों से महान् श्रीरामजी हैं। तमसः (प्राकृत मण्डल के परमः = परे अप्राकृत मण्डल श्री साकेत धाम में विराजमान, धाता = सृष्टि कर्त्ता हैं। सर्वत्र व्यापक की स्थान विशेष में स्थिति कैसे होगी तो कहते हैं कि विग्रह विशेष शंख चक्र गदाधरः रेखारूप से शंख, चक्र, गदा को धारण किये हैं। अर्थात्

श्रीरामजी की हथेली में शंख-चक्र गदा की रेखाओं के चिह्न हैं अथवा शंख चक्र गदा धनुषवाण का भी उपलक्षण है। आश्रितों की रक्षा करने के लिये सर्वदा शंख चक्र गदा धनुषवाण आदि पंच आमुधों को धारण किये रहते हैं। जैसे अभियुक्तों ने कहा है "पातु प्रणत रक्षायां विलम्वमसहन्निव" "सदा पंचायुधीं विभ्रत्स नः श्रीरङ्ग नायकः" अर्थात् प्रणतों की रक्षा में विलम्व को न सहते हुए श्रीरंगनाथजी पंच आयुधों को सदा धारण करते हैं। श्रीवत्स बक्षा=श्रीवत्स चिह्न रक्तवर्ण का मत्स्याकार छाती में दक्षिण तरफ है। नित्य श्री=अनपायिनी श्रीसीताजी से युक्त अजय्यः अतएव जीतने में न आने वाले, शाश्वत=अपक्षय रहित, ध्रुव परिणाम रहित हैं, इन दो विशेषणों से जीवगत षड्विकारों से शून्य दिखाया। सत्य पराक्रम, वेवेष्टि जगत इति विष्णुः सर्व व्यापक श्रीरामजी मनुष्यरुप धरण करके बानर भाव को प्राप्त सब देवों से परिवृत होकर श्रीमान् सर्वलोकेश्वर श्रीरामजी ने सब लोकों के हित की कामना से परिवार के समेत भयाबह देवों के शत्रु आपको मारा है, ऐसा निश्चय है।

श्रीजानकीजी के अग्नि परीक्षा के समय ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, यम, बरुण, कुवेर; आकर अग्नि में प्रवेश करती हुई श्रीजानकीजी की आप उपेक्षा क्यों करते हैं, ऐसा हाथ जोड़कर श्रीरामजी से पूछते हैं :—

ततः सहस्ताभरणान्प्रगृह्य विपुलान् भुजान्।
अब्रवन्स्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्रांजलिस्थितम् ॥१४॥

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठोज्ञानविदां विभुः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥१५॥

त्रिदशों (देवों) में श्रेष्ठ ब्राह्मा, विष्णु, शिव आदि आये हुए देवों ने हाथों के आभूषणों से भूषित बड़ी-वड़ी भुजों को उठाकर ध्यानांगतया हाथ जोड़कर स्थित श्रीरामजी से बोले, आप सब लोक के श्रेष्ठकर्त्ता है अर्थात् जगत्कर्ता के भी नियामक हैं तथा ज्ञानियों में सर्व विषयक ज्ञान विशिष्टों के स्वामी हैं, फिर आप हव्यवाहन (अग्नि) में गिरती हुई श्रीजानकीजी की क्यों उपेक्षा करते हैं। इससे श्रीजानकीजी में किंचित् भी दोष का संसर्ग नहीं है, यह श्रीरामजी आपको ज्ञान है यह सूचित किया। अदोष में दोष का आरोपण करना अनुचित हैं।

कथ देवगण श्रेष्ठ मात्मानं नावबुद्धय से ।
ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ॥१६॥
त्रयाणामपि लोकानामादि कर्ता स्वयं प्रभुः ।
रुद्राणामष्टमोरुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः ॥१७॥
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप ॥१८॥
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥१८½॥

सब देवों में श्रेष्ठ अपने स्वरुप को आप क्या नहीं समझ रहे है। पूर्व=पूर्व कल्प में अथवा सृष्टि के पहिले बसुओं में प्रजा के स्वामी ऋतधामा नामक बसु आप ही थे। तीनों लोकों के आदि कर्ता=अण्ड कोशाधिपति पर्यन्त अद्वारवत्सृष्टि कर्ता, स्वयं प्रभु=

स्वयं प्रकट होने वाले सर्व नियामक, एकादश रुद्रों में अष्टम रुद्र, साध्यों में पञ्चम साध्यदेव आप हीं हैं। अश्विनी कुमार आपके कर्ण, सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं, इससे श्रीरामजी का विराट रूप का वर्णन किया। सृष्टि के अन्त विनाश आदि (सृष्टि के पहले) और मध्य में हे परंतप आप हीं दिखाई पड़ते रहते हैं। अतः प्राकृत मनुष्य की तरह श्रीजानकीजी की उपेक्षा क्यों करते हैं। देवों के ऐसे बचनों को सुनकर श्रीरामजी ने कहा कि मैं तो अपने मनुष्य दशरथजी का पुत्र मानता हूँ। आप हीं सब बतावें कि मैं कौन, किसका, कहाँ से आया हुँ। देवों ने उत्तर दिया—

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।

नारा: अयनं यस्य स नारायण: अर्थात् नार कहते जल को जलसे हीं नरों की उत्पत्ति होती है, वे जल जिनका अयन (निवास स्थान) है अतः नारायण पदवाच्य जो हैं सो आप हीं हैं। अर्थात् विराट् रुप नारायण पद वाच्य जो हैं सो आप हीं हैं। अवातप्त समस्त काम को जगत् का व्यापार में प्रवृत्ति कैसे होगी, देवः दीव्यतीति देव। क्रीड़ा में प्रवृत्त हैं, लीला ही प्रयोजन है। श्रमान् नित्यं श्रीरस्यास्तीति श्रीमान् नित्य श्रीः श्रीय श्री श्री की भी श्री श्रीजानकीजी से युक्त यहाँ नित्य योग में मतुप् प्रत्यय है। चक्रायुधः विराट्के चिह्न चक्र आयुध को लिये हैं, चक्र, धनुषवाण, शंख गदा का उपलक्षण है। अतः पंचायुधों से युक्त हैं और प्रभु हैं। सर्व सामर्थ्य से युक्त हैं।

एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूत भव्यसपत्नजित् ॥
अक्षरं ब्रह्मसत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ॥२०॥

हे राघव एक शृंग=एक दंष्ट्र वाले बारह पृथिवी को धारण करने वाले बाराह हैं। प्रलय समुद्र में निमग्न पृथिवी का बराह रुप से उद्धार करने बाले आप हीं है। भूत कालीन शत्रु मधुकैटभादि, भव्य भविष्य में होने बाले शत्रु शिशुपालादि उनको जीतने वाले आप हीं हैं। अथवा भूत भविष्यत् काल रुप जो शत्रु जन्म मरण का हेतु काल हीं हैं, उनको आप जीतने वाले हैं। नित्य हैं, अपने भक्तों के जन्म मरण को छुड़ा देते हैं। न क्षरतीति अक्षरं। आप्तोति व्याप्नोति वा अक्षरम् जिसका नाश न हो अथबा जो व्यापक हो उसको अक्षर कहते हैं सो आप हीं है। आप ब्रह्म हैं, मध्य, अन्त और आदि भी आप हीं हैं। अतः नित्य हैं। आप सत्य हैं, अर्थात् "अस्ति, जायते परिणमते, विवर्धते, अपक्षीयते, नश्यति, इन षट् भाव विकारों से शून्य हैं।

लोकानांत्वं परोधर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।
शार्ङ्गधन्वाहृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ॥२१॥

सब लोकों के परम धर्म=सिद्धरुप धर्म अर्थात् सब लोक के कल्याण के साधन भूत आप हीं हैं। तथा सर्वत्र नियमन करने वाली सेना चारो तरफ हैं, चतुर्भुजः एक साथ चारो प्रकार के पुरुषार्थों को अपने आश्रितों को प्रदान करने बाले हैं। अपने जनों की रक्षा के लिये सदा शार्ङ्गधनुष धारण किये हैं। हृषीकों इन्द्रियों के ईश स्वामी हैं। अर्थात् सब इन्द्रियों के आकर्षक

दिव्य विग्रह वाले हैं। पुरुषः = पुरु सनोतीति पुरुषः ब्रह्म को देने बाले अथवा पुरि[१] हृदय गुहायां शेते हृदय में शयन करने वाले यद्वा समस्त[२] जगत में पूर्ण होने से आप पुरुष हैं। या पुरुणि-फलानि सनोति ददाति बहुत फलों के देने बाले। यद्वा पुरातन[३] होने से पुरुषोत्तम हैं, क्योंकि ''यस्मात्क्षारमतीतोहमक्षारादपि चोत्तमः ; अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। क्योंकि क्षर से हम परे हैं और अक्षर से उत्तम हैं। अतः लोक और बेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हैं।

टिप्पणीः—१ पुरि = पुरि शयनं पुरुषमीक्षात इति निर्वचनश्रुतेः।
२ समस्त = तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वमिति श्रुतेः।
३ पुरातन = पुर्वमेवाहभिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्व मिति श्रुतेः।

अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव वृहद्बलः।
सेनानीर्ग्रामणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्त्वंक्षमादमः ॥२२॥

अजितः किसी से न जीते जाने वाले अर्थात् आश्रितों की रक्षा करने में किसी से भी भङ्ग को प्राप्त नहीं होते हैं। नन्दन नामक तलबार को धारण करने वाले हैं। विष्णु व्यापनशील हैं। जो जहाँ दया का पात्र होता है उसकी उसी जगह रक्षा करते हैं। कृष्ण श्यामवर्ण हैं अथवा ''कृषिभूंवाचकः शब्दोणश्चनिर्वृत्ति वाचकः, कृषि भूवाचक शब्द हैं और ण निवृत्ति वाचक है, भू निर्वृत्ति के हेतु आप हीं हैं। वृहद्बलः अशेषब्रह्माण्डों के लीला-कन्दुक की तरह धारण करने में समर्थ हैं। सेनानीः देवसेना के

निर्वाहक, ग्रामणीः दिव्यजनों के परिपालक, तथा सब जगत् आप हीं हैं। निश्चयात्मिका बुद्धि, क्षमा इन्द्रिय निग्रह रुप दम आप हीं हैं। अर्थात् बुद्धयादि के प्रवर्तक हैं क्योंकि "न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। यं हि रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्तितम्" पशुपाल की तरह दण्ड लेकर देव किसी की रक्षा नहीं करते, किन्तु जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसको सद् बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

प्रभवश्चाप्ययश्चत्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः।
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभोरणान्तकृत् ॥२३॥

आप समस्त जगत के प्रभाव उत्पत्ति स्थान हैं, तथा अप्यय समस्त जगत् के लय स्थान भी हैं, उपेन्द्र इन्द्रके छोटे भाई वामन, मधु दैत्य का नाश करने वाले अर्थात् वेदापहारक मधुदैत्य के नाश के लिये आपने हीं अवतार लिया था। इन्द्र के कर्म के सामान कर्म आपके हैं, आप हमेन्द्र निरनिशप ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। आप पद्मनाभ हैं अर्थात् आपकी नाभि से पद्म (कमल) उत्पन्न हुआ था, उसी से मेरी उत्पत्ति हुई। अतः मेरे भी आप ही जनक हैं और रण में शत्रु का नाश करने वाले हैं।

शरस्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः।
सहस्रशृङ्गो वेदात्माशतशीर्षो महर्षभः ॥२४॥

आप शरण के योग्य हैं, अर्थात् शरण के योग्य ज्ञान, शक्ति, वल, दया आदि सम्पन्न हैं। तथा शरण हैं, अर्थात् रक्षण के उपाय भी आप हीं हैं, ऐसा अलौकिक तत्व साक्षात् करने में समर्थ

महर्षियों तथा दिव्य सनकादिक महर्षियों ने कहा है सहस्र शाखा रुप ऋङ्ग वाले और अनेक विधिमय मस्तक वाले वेद की आत्मा आप हीं हैं और महान् श्रेष्ठ हैं। अथवा शिशुमार प्रजापति रुप आप हीं हैं।

त्वंत्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः।
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ॥२५॥

आप तीनों लोकों के आदि कर्ता हैं, अर्थात् ब्रह्मादिकों के द्वारा आदि सृष्टि आप ही करते हैं, समष्टि सृष्टि कर्ता हैं, इससे ब्यष्टि सृष्टि करने की व्यावृत्ति की गई। आप स्वयं प्रभु हैं, आप किसी की प्रेरणा से सृष्टि नहीं करते, आपका कोई प्रेरक नहीं है। क्योंकि "न तस्येशे कश्चन" यह श्रुति प्रमाण है। सिद्ध मुक्तात्मा, साध्य[१] नित्यों के आश्रय हैं अर्थात् साम्य भोग प्रदान करने वाले हैं। आप[२] पूर्वज हैं अर्थात् आश्रितों की अपेक्षा के पूर्व हीं उनकी रक्षा करने के लिये प्रकट हैं।

टिप्पणीः—१ यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः, इति श्रुतिः।
२ अहमस्मि प्रथमजा ऋतश्येति श्रुतिः।

त्वयज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परात्परः।
प्रभव निधनं चापि नो विदुः को भवानिति ॥२६॥

आप यज्ञ हैं, अर्थात् यज्ञ निर्वाहक पशु, हवि, घृत, स्रुक, स्रुवा आदि शरीर वाले तथा यज्ञाराध्य इन्द्र, वरुण, कुवेर आदि शरीर वाले आप हीं हैं। क्योंकि गीता में ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्मग्नौ ब्रह्मणाहुतम्" इत्यादि कहा गया है। आप वषट्कार

हैं, यहाँ वषट्कार उपलक्षण है। अतः "आश्रावयेति चतुरक्षर-मस्तु श्रौषदिति चतुरक्षरं यजेति द्वयक्षरं ये यजामहे इति पञ्चा-क्षरम्" इस मंत्र से कहे गये सत्तारह अक्षरों से यज्ञ में आराधित होने वाले आप हीं हैं। प्रणववाच्य परात्पर आप हीं हैं। आपके प्रभव = प्राकट्य, निधन = तिरोधान को कोई नहीं जानता तथा आप कौन है निश्चय रुप से वेद और वैदिक भी नहीं जानते "नेति नेति" कहके पुकारते हैं।

दृश्यते सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च।
दिक्षु सर्वासु गगनेपर्वतेषु नदीषु च ॥२७॥

योगियों से आप सर्वभूतों, गौओं, ब्राह्मणों, सब दिशाओं, आकाश, पर्वतों और नदियों में अन्तर्यामी रुप से देखे जाते हैं।

सहस्रचरणः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रदृक्॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ॥२८॥

वेद के पुरुषसुक्त प्रतिपादित आप हीं हैं। अतः सहस्रचरण, सहस्र शिर, सहस्रनेत्र हैं और श्रीमान् हैं, श्री, भू, लीलापति हैं, क्योंकि "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या" ऐसा वेद कहता है। तथा सब पर्वतों पृथिवी और सब भूतों को आप धारण करते हैं, इससे आधाराधेय सम्बन्ध संसार का है यह द्योतित किया।

अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः।
त्रींल्लोकान् धारयन् रामदेवगन्धर्वदानवान् ॥२९॥

पृथिवी के अन्त (नाशके) समय हे रामजी आप देवगन्धर्व

और दानवों के समेत तीनों को धारण करते हुए प्रलय सलिल में महोरग (शेष) रुप से दिखाई पड़ते हैं।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती।
देवा रोमाणि गात्रेषु व्रह्मणानिर्मिताः प्रभो ॥३०॥

हे श्रीरामजी मैं आपका हृदय हूँ, देवी सरस्वती जिह्वा है और हे प्रभो व्रह्म मैंने आपके गात्रों में देवों को निर्मित किया तथा औषधि वनस्पति आदि रुप से रोमों को निर्मित किया है।

निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषोदिबसस्तथा।
संस्कारास्त्वभन् वेदा नैतदस्ति त्वयाविना ॥३१॥

आप का निमेष (नेत्रवन्द करना) हीं रात्रि है तथा उन्मेष (नेत्र खोलना) दिन है और संस्कार प्रवृत्ति निवृत्ति वोधक) वेद हैं अथवा संस्कारा (आपके निश्वास हीं वेद हैं, क्योकि "तस्य हवा एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः" इति श्रुति प्रमाण है। आपके विना कुछ भी नहीं हैं।

जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्स लक्षणः ॥३२॥

सब जगत् आपका शरीर है, अर्थात् आपके नियमन से यह जगत् आधेय, विधेय और शेषभूत है एतावता "सर्वं खल्विदं व्रह्म तत्त्वमसि, इत्यादि सामानाधिकरणष्य श्रुतियों के अर्थ का प्रतिपादन किया अर्थात् शरीर शरीरी भाव से तत्त्वमस्यादि श्रुतियाँ समन्वित होती हैं। आपका स्थैर्य (धारण सामर्थ्य) हीं वसुधा-

तल (पृथिवी) है। आपका कोप हीं अग्नि है, प्रसाद हीं सोम (चन्द्रमा) और श्रीवत्स लक्षण विष्णुजी हैं।

त्वयालोकास्त्रयः क्रान्तापुरास्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः।
महेन्द्रश्च कृतो राजा वलिवधवो सुदारुणम् ॥३३॥

पहिले आपने अपने तीन विक्रम (पाद प्रक्षेपों) से तीनों लोकों का क्रमण किया है अर्थात ,तीन पैरों में तीनों लोकों का नाप लिया है वामन रूप धारण करके और अत्यन्त दारुण वलि को वधकर इन्द्र को (त्रैलोक्य का) राजा बनाया है।

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥३४॥
तदिद नस्त्वया कार्यं कृतं धर्म भृताम्वर ।$\frac{१}{२}$

श्री सीताजी हीं लक्ष्मीरुप धारण करती हैं और आप विष्णु रुप होते हैं आप देव (नित्य विहारी) हैं, कृष्ण (कृष्णवर्ण) हैं और आप प्रजा के पति हैं अर्थात् चराचर प्रजा के पालक, पोषक हैं रावण का वध करने के लिये मनुष्य शरीर में आप प्रवेश किये हैं। अत: हे धर्म भृताम्बर रावण वधरुपी यह हमारा कार्य आप ने कर दिया है।

निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ॥३५॥
अमोघं देववीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः।
अमोघं दर्शनं राम ममोघस्तव संस्तवः ॥३६॥
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नराभुवि ॥

हे रामजी आपने रावण को मार दिया। अतः अवतार

प्रयोजन पूरा हो गया (इसके वाद महाराज्य पद से कुछ काल हर्षित होते हुए) दिवं परनाक नामक नित्यक्रीड़ास्थल अयोध्यारव्य साकेत धाम को प्राप्त होवें। हे देव श्रीरामजी ! आपका वीर्य (बल, तेज) अमोघ है, सफल है आपके पराक्रम मोघ निष्फल नहीं है अपितु सफल है। श्रीरामजी सर्वोपास्य हैं और सर्व सिद्धिप्रद हैं, इस बात को देवगण कहते है कि हे श्रीरामजी आपका दर्शन अमोघ है अर्थात् ऐहिक पारलौकिक सकल फलों का साधक है और आपका संस्तब (प्रार्थना) अमोघ है सफल मनोरथ पूरक है अतः हे श्रीराम सत्ताबिशिष्ट लोकों में जो नर आप में भक्तिमान होगें वे सब अमोघ होगें, अर्थात् महाफलों का प्राप्त करेंगे।

ये त्वां देवंध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥३७॥
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोकेपरत्र च।
इममार्षं स्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम्।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्तितेषां पराभवः ॥३८॥

जो मनुष्य दिव्यगुण सम्पन्न, पुराण पुरुषोत्तम आपके दृढ़ भक्त होगें वे मनुष्य इस लोक के और परलोक के समस्त मनोरथों को प्राप्त करेंगे। इस वैदिक पुरातन इतिहास दिव्य स्तोत्र को जो मनुष्य कीर्तन करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा। अर्थात् जो श्रीरामजी की साङ्गोपाङ्ग भक्ति करने में असमर्थ हैं, उनके लिये यह स्तोत्र हीं सकल सिद्धिप्रद है। इस वेद सम्बन्धि पुराने ऐतिहासिक दिव्य स्तोत्र जो मनुष्य श्रीरामजी की स्तुति करेगा

उसका कभी पराभव नहीं होगा अर्थात् वह आवागमन से (जन्म-मरण) से रहित हो जायगा।

इन्द्रदेव ने उस समाज में आये हुए श्री दशरथ जी को श्री रामजी के लिये दिखाया तदनन्तर लक्ष्मण जी के समेत श्रीरामजी ने पिताजी को प्रणाम किया। दशरथ जी ने श्रीरामजी को गोद में बैठाकर आलिंगन किया और कहा कि—

इदानीं च बिजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः।
वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥३९॥

हे सौम्य श्रीरामजी सुरेश्वर सब देवों ने रावण वध के लिये यहाँ पुरुषोत्तम आपको (हमारे पुत्र रुप से) अच्छादित कर रखा है ऐसा अब हम जाने हैं। वास्तव में आप परात्पर पुरुषोत्तम हैं। रावण के वध के लिये मनुष्य भाव को प्राप्त हैं।

एते सेन्द्रास्त्रयोलोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥४०॥

श्रीदशरथजी ने श्रीलक्ष्मणजी को हृदय से लगा कर कहा कि श्रीरामजी की सेवा करो, आप धर्म को प्राप्त करोगे, आपका यश होगा श्रीरामजी के प्रसन्न होने पर आपको अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इन्द्रादि देवों के समेत तीनों लोक, सिद्धगण और महर्षिगण महात्मा पुरुषोत्तम श्रीरामजी को अभिवादन करके सभी श्रीरामजी की पूजा कर रहे हैं, इससे दशरथजी ने श्रीरामजी को सर्व देवों से आराधित हैं, ऐसा सिद्ध किया।

श्रीदशरथजी ने श्रीलक्ष्मण जी को श्रीराम रुप का उपदेश दिया कि—

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥४१॥

हे लक्ष्मणजी शत्रुतापक श्रीरामजी वहीं हैं, जो देवों का हृदय (सब देवों का अन्तर्यामी) गुह्य (साक्षात् उपनिषद् वेद्य) अव्यक्त (भक्ति शून्यों से दुर्ज्ञेय) अक्षर (षड् भाव विकारों से रहित) ब्रह्म सम्मित (वेद प्रतिपादित) जो वस्तु कही गयी है, वही परंतप श्रीराम जी हैं। अथवा—शत्रुतापक श्रीरामजी ब्रह्मादिक देवों के भी हृदय (नियन्ता) हैं। अतः तदुक्त (श्रीराम जी वचन) अव्यक्त (गूढअभिप्राय का) हैं। अतएव गुह्य हैं और ब्रह्म संमित (वेद तुल्य) हैं, तथा अक्षर नाश रहित नित्य हैं। अतः श्रीरामजी के कहने का आदर से अनुष्ठान करना सर्वथा आज्ञा का पालन करना यह उपदेश है।

महर्षि जी श्री रामायणजी के माहात्म्य को लिखते हैं कि—

रामायणमिदं कृत्स्नं शृणवतः पठतः सदा।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥४२॥
आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः।

सम्पूर्ण रामायण पढ़ने और सुनने वाले पुरुष के उपर सनातन (ब्रह्मादिकों के रचयिता) विष्णु (सर्वत्र व्यापक) आदिदेव (सब देवों के आदि) अर्थात् महादेव। प्रभु (नित्य विहारकर्ता) नारायण (नारेण नित्या अयनं गमनं यस्य, अर्थात् परम नीतिमान्)

हरि पुनर्वसु नक्षत्र के तृतीय चरण में अवतरित होने वाले श्री रामजी प्रसन्न होते हैं। अथवा इस सम्पूर्ण रामायण को जो मनुष्य सदा सुनेगा या पढ़ेगा उसके ऊपर श्रीरामजी सदा प्रसन्न रहेंगे। (उनके प्रसन्न रहने से सारा जगत् प्रसन्न रहेगा। क्योंकि जगत् के निमित्तोपादान कारण वे हीं हैं) अतः वे हीं सनातन विष्णु (परात्पर व्यापक) आदि देव नारायण हरि आदि नामों से प्रभु महावाहु प्रसिद्ध हैं। क्योंकि वेद भगवान् का उपदेश है कि "कारणं तु ध्येयः" — जगत् के उपादान कारण का ध्यान करना चाहिये।

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रव्याहरत विश्रब्धं वलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥४३॥

यह आख्यान (देवताओं के मध्य में) पहले से हीं प्रवृत था, अर्थात् पहले से हीं पढ़ते थे, आपका कल्याण होवें। अतः आप सब भी विश्वास से कहो, पढ़ो अर्थात् आप सब भी श्री रामायण जी का विश्वास पूर्वक पाठ करो और स्तुत्यादि के द्वारा श्री विष्णु के वल को बढ़ाओ।

कुटुम्ब वृद्धि धनधान्य वृद्धिं स्त्रियश्चमुख्या सुखमुत्तमञ्च।
श्रुत्वा शुभंकाव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वांभुविचार्थसिद्धिम् ।४४।
आयुष्य मारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्कर मृद्धि कामैः ॥४५॥

गम्भीरार्थं इस शुभ आदि काव्य को सुनकर मनुष्य कुटुम्ब की वृद्धि, धन धान्य की वृद्धि, उत्तम स्त्रियां, उत्तम सुख और पृथिवी तलपर सब प्रकार की अर्थ सिद्धि को प्राप्त करता है। यह काव्य आयु को बढ़ाने बाला, आरोग्य करने बाला, यश करने बाला, अच्छे भाई पना को करने वाला और शुभ वुद्धि को करने बाला है। तथा ओज को बढ़ाने बाला है। अतः ऋद्धि (सर्वमनोरथ सिद्धि) चाहने बाले सज्जनों को इस काव्य को नियम से सुनना चाहिये (इस प्रकार फल स्तुति के साथ इस युद्ध काण्ड को समाप्त किया)।

इति श्रीवाल्मीकीय काव्योपनिषद श्रीललित

किशोरी शरण संगृहीतायां

युद्ध काण्डं समाप्तम्।

* सीतारामाभ्यां नमः *

॥*॥ श्रीहनुमते नमः, श्रीवाल्मीकिये नमः ॥*॥

श्रीवाल्मीकि रामायणोपनिषदः

॥ उत्तरकाण्डम् ॥

श्रीराघवेन्द्र सरकार लंका विजय करके अयोध्या आये और जब राज्याभिषिक्त हो गये, तब अगस्त्य जी आदि अनेक महर्षिगण श्रीरामजी का अभिनन्दन करने आये। श्रीअगस्त्य जी ने श्रीराम जी की इस प्रकार प्रशस्ति की कि आपने सकुल पुत्र पौत्रादि समेत लोकरावण रावण का वध किया, यह बड़े हीं सौभाग्य का काम किया। उसमें भी रावणि (मेघनाद) का वध तो अत्यधिक प्रशंसनीय हुआ, क्योंकि वह रावण से भी वलवान् था। श्री अगस्त्य जी से रावणि की प्रशंसा सुनकर श्रीरामजी ने पूछा कि रावण, कुंभकरण, प्रहस्त, अतिकाय, आदि राक्षसों को छोड़कर रावणि को इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं। क्या वह रावण से भी वलवान् था। इस प्रश्न पर अगस्त्य जी ने राक्षसों की उत्पत्ति की कथा बड़े विस्तार से कही। जिसके आरम्भ में माली, सुमाली, माल्यवान की उत्पत्ति और विष्णु भगवान् के द्वारा मारे गये

अवशेष पाताल में चले गये इसलिये देवकंटक राक्षसों को पंचायुध-धारी नर समुदाय वास करने वाले साकेताधीश से अन्य कोई नहीं मार सकता ! अतः आप हीं—

भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः।
राक्षसान् हन्तुमुत्पन्नोह्यजय्यः प्रभुर्व्ययः॥१॥
नष्टधर्म व्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः।
उत्पद्यते दस्युबधे शरणागतबत्सलः॥२॥

आप नारायण (नार=नीति, उससे चलने वाले होने से आपका नाम नारायण) है, क्योंकि "नाय्यात्पथः प्रचलनं यतो नैवास्य विद्यते। अतो नारायणो रामो विद्वद्भिः परिकीर्तितः।" क्योंकि न्याय मार्ग से पृथक् चलना श्रीरामजी का नहीं है। अतः विद्वान् पुरुषों ने श्रीरामजी को नारायण कहा है=मर्यादा पुरुषोत्तम) देव=नित्य विहारी हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष रुप चारों पुरुषार्थों को अपने आश्रितों के लिये वाहन करते हैं। अर्थात् प्राप्त करते हैं। अतः चतुर्बाहु हैं। आप सनातन नित्य हैं और अजय्य (किसी से भी जीतने योग्य नहीं) हैं। प्रभु और अव्यय सर्व विकार शून्य हैं। आप हीं राक्षसों के मारने के लिये प्रादुर्भूत हुए हैं। धर्मव्यवस्था को नष्ट करने वाले दस्यु राक्षसों के वध के निमित्तशरणागत वत्सल प्रजाओं को रक्षितकरने वाले आप हीं समय-समय पर उत्पन्न होते हैं। अर्थात् प्रादुर्भूत होते हैं।

श्रीरामजी के राज्य काल में एक ब्राह्मण का बालक मर गया, उसके शव को लेकर वह ब्राह्मण श्रीरामजी के द्वार पर

आया और रो-रो कर कहने लगा कि हमारे पूर्व जन्म के पापों से पुत्र के निधन को देख रहा हूं, इस जन्म में मैंने झूठ नहीं बोला है, न हिंसा की है और न किसी प्राणी के प्रति कोई पाप किया है। आज तक श्रीरामजी के राज्य में वृद्धावस्था के पहले हीं वाल्यावस्था में ऐसी मृत्यु न देखी है, न सुनी है। इस समय अवश्य करके श्रीरामजी का कोई महान् दुष्कर्म है। जिससे मेरा पुत्र मर गया है। ब्राह्मण के करुण रुदन को सुनकर श्रीरामजी ने मार्कण्डेय, मोद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जावालि, गौतम, नारद इन आठ मंत्रियों के समेत वशिष्ठ को बुलाया और ब्राह्मण का समाचार सुनाया तब नारद जी ने कहा कि सत्ययुग में ब्राह्मण हीं तपस्वी होते थे। त्रेता में क्षत्रियों में भी तपस्या आई। अतः त्रेता में ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों तपस्वी हुए। द्वापर में वैश्य भी तपस्वी हुआ और कलियुग में शुद्र में तपस्या आ जायगी। परन्तु इस समय त्रेता युग है, कोई हीन वर्ण आज तपस्या कर रहा है इसीसे बालक की मृत्यु हुई है। आप उसका पता लगावें और उसको उस अधर्म से रोकें। ऐसा करने से ब्राह्मण बालक जीवित हो जायगा। नारद जी के अमृतमय वचन सुन कर श्रीरामजी हर्षित हुए और लक्ष्मणजी से कहा कि ब्राह्मण का आश्वासन करके, बालक का शव तैल में रखवा दो। ऐसा कहकर पुष्पक विमान को याद किया। तुरन्त वह आ गया और उस पर बैठ कर श्रीरामजी अधर्म का अन्वेषण करने के लिये और पश्चिम, उत्तर, पूर्व, दिशा में अन्वेषण करके जब दक्षिण दिशा में गये, वहाँ

एक शुद्र को तपस्या करते देखकर उसका वध किया और उसको सद्गति प्रदान कर अगस्त्य महर्षि के आश्रम में गये। महर्षि ने श्रीरामजी का आथित्थ्य सत्कार करके कहा कि—

त्वंहि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्त्वं सनातनः ॥४॥

हे श्रीरामजी आप हीं नारायण हैं (क्योंकि नारेण नीत्या अयते गच्छति इति नारायणः अर्थात् नीति से चलने वाले हैं) और सब देवताओं के आप प्रभु स्वामी हैं तथा सनातन पुरुष आप हीं हैं। अतएव आप में समस्त चराचर प्रतिष्ठित है।

भरणे हि भवान् शक्तः सेन्द्राणां मरुतामपि।
त्वं हि शक्तस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसः ॥५॥

इन्द्र आदि के समेत समस्त देवताओं के भरण पोषण में आप समर्थ हैं, तथा इन्द्र आदि समस्त देव लोक वासियों को तारने में आप हीं समर्थ हैं।

श्रीरामजी ने उस रात्रि में अगस्त्य जी के आश्रम में वास किया और प्रातःकाल चलते समय अगस्त्य जी से कहा कि मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया और फिर भी अपने को पवित्र करने के लिये आपका दर्शन करने के लिये पुनः आऊंगा श्रीरामजी के इस वचन को सुनकर धर्मनेत्र, तपोधन अगस्त्य जी ने कहा कि—

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम्।
पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥६॥
मुहूर्तमपिरामत्वां येऽनुपश्यन्ति केचन।

पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्तेत्रिदिवेश्वरैः ॥७॥

हे श्रीरामजी आपने जो यह कहा कि पवित्र होने के लिये आपका दर्शन करने के लिये पुनः आवेगें सो यह शुभ अक्षर वाला वाक्य अत्यन्त हीं अद्भुत हैं। क्योंकि हे रघुनन्दन आप हीं सब भूतों को पवित्र करने वाले हैं। आपके हीं दर्शन से हम सब भी पवित्र हो जाते हैं। क्योंकि हे श्रीरामजी जो कोई भी मुहूर्तमात्र भी आपका दर्शन करते हैं वे पवित्र हो जाते हैं और स्वर्गभूत हो जाते हैं तथा देवताओं से भी पूज्य हो जाते हैं॥

ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनोभुवि।
हतास्ते यमदण्डेन सद्योनिरयगामिनः ॥८॥
ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम्।
भुवि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥९॥

और हे श्रीराघव जो प्राणी भूमण्डल पर आपको घोर चक्षुष से अर्थात् हेय दृष्टि से देखते हैं वे तुरन्त नरक गामी हो जाते हैं और यमदण्ड के द्वारा हत होकर सद्यः नरक गामी होते हैं। यहाँ प्राणिनः यह सामान्य बचन है। अतः तपः प्रभाव से युक्त होने पर भी आप से द्वेष करने पर नरकगामी हो जायेंगे। परन्तु वे सद्यः तत्क्षण में हीं नरक गामी होगें। लेकिन वे हीं कालान्तर में पूर्वोक्त रीति से आपका दर्शन करेगें, आपके दर्शन के प्रभाव से मोक्षभाव को प्राप्त हो जायगें। आप ऐसे सकल कल्याण गुण युक्त परमानन्द रुप हैं, अब प्राणियों को पवित्र कर देने वाले हैं। अतः हे राघव कालान्तर में भी आपके चरित्रों का गान करने वाले

प्राणी सिद्धि मोक्षरुप सिद्धि को प्राप्त होंगे। ईदृश: पावन: ऐसे आप पवित्र हैं कि जो राग, द्वेष, काम, भय आदि किसी प्रकार से आपको कहेंगे वे मोक्ष को प्राप्त होगें।

एक वार श्रीरामजी ने नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ की जिसमें समस्त ऋषि, महर्षि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी आये और श्रीवाल्मीकि महर्षि भी श्रीजानकी जी, लव, कुश दोनों पुत्रों के समेत आये। महर्षि वाल्मीकि की आज्ञा से श्री लव-कुश दोनों भाइयों ने श्री रामाश्वमेध यज्ञ में वाल्मीकीय रामायण का तंत्री वाद्य पर गान किया। श्री राम जी ने सभा में सब के बीच में गान सुना। अन्त में श्रीरामजी को यह निश्चय हुआ कि ये दोनों कुमार श्रीजानकीजी के हैं और वाल्मीकिजी के साथ श्रीजानकीजी भी आयी हुई हैं तब श्रीरामजी ने लोकापवाद का मार्जन करने के लिये महर्षि वाल्मीकिजी की अनुमति से सभामें सबके समक्ष श्रीजानकी जी से पवित्रचारित्र के विषय में शपथ करने को कहा। उस समय श्रीजानकीजी ने सब के सामने शपथ की और कहा कि यदि मैं श्रीरामजी से अन्यपुरुष का मन से भी चिन्तबन नहीं करती हूं, यह सत्य हो तो भूमि देवी हम को विवर देवैं ताकि मैं भूदेवी की गोद में पुनः प्राप्त होजाऊँ, तथा मन वचन कर्म से श्रीरामजी की पूजा करती हूं यह सत्य है तो भूदेवी हमको विवर देवैं। यदि मैं श्रीरामजी से अन्य को नहीं जानती यह सत्य है तो माधवी देवी हमको विवर देवैं।

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्त्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥१०॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तुनागैरमित बिक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्न विभूषितैः ॥११॥

इस प्रकार श्रीजानकी जी के शपथ करने पर भूतल से उठा हुआ अद्भुत, उत्तम दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ जो कि दिव्यरत्नों से विभूषित अमित पराक्रमी तक्षकादि नागों के शिरों पर धरा हुआ था और दिव्य रचना से रचा हुआ था ।

तस्मिस्तु धरणी देवी बाहुभ्यांगृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्येनामासने चोपवेशयत् ॥१२॥

भूमिदेवी ने उस सिंहासन के ऊपर स्वागत से अभिनन्दन करके दोनों हाथों से उठाकर श्री मैथिली जी को बैठा लिया ।

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तींरसातलाम् ।
पुष्प वृष्टिरविच्छिन्नादिव्या सीता मवाकिरत् ॥१३॥

सिंहासन पर बैठी हुई रसातल में प्रवेश करती हुई श्रीसीता जी को देखकर अनवरत दिव्य पुष्पों की वर्षा ने श्रीसीता जी को अच्छादित किया ।

सीता प्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत् समागमः ॥
तन्मुहूर्त मिवात्यर्थं समं सम्मोहितं जगत् ॥१४॥

श्रीसीताजी के प्रवेश को देखकर उन सब वाल्मीकि आदि मुनियों का मन मोहित था, इस कारण से सम्पूर्ण जगत् उस मुहूर्त में अत्यन्त संमोहित हो गया था ।

श्रीसीताजी के प्रवेश को देख कर श्रीरामजी ने बड़ा क्रोध किया और पृथ्वी से कहा कि, यद्यपि हे पृथिवी हमारी शाशु हो, अतः श्रीसीताजी को तुरन्त निकाल कर हमको दे दो। अन्यथा हम तुम को पर्वत समुद्र के समान विध्वस्त कर देगें। इस प्रकार जब श्रीरामजी ने कहा तब—

ब्रह्मासुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम्।
स्मर त्वं पूर्वकं : मन्त्रं चामित्र कर्षण ॥१५॥
न खलुत्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तामम्।
इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥१६॥
सीता हि विमला साध्वी तवपूर्व परायणा।
नागलोकं सुखंप्रायात् त्वदाश्रय तपोवलात् ॥१७॥
स्वर्गे ते सङ्गमो भूयो भविष्यति न संशयः।

देवगणों के समेत श्रीब्रह्मा जी ने श्रीरामजी से कहा कि हे शत्रुकर्षण श्रीरामजी आप अपने पूर्वभाव का स्मरण करें। अर्थात् अपने साकेतस्थ रुप का स्मरण करें। अभी तक तो आपने मनुष भाव इसलियें प्रकट किया था कि रावण ने वरदान हीं ऐसा मागा था कि मनुष्य और बानर को छोड़ और किसी से न मारा जाऊँ, वह कार्य पूरा हो गया। अब अपने पूर्व स्वरुप का स्मरण कीजिये और हम सब देवों के साथ जो बिचार किया था, उसका स्मरण कीजिये और मानुष भाव का नटन न कीजिये। हे महा-वाहो सर्वश्रेष्ठ आपको मैं स्मरण दिलाने में समर्थ नहीं हूं, क्योकि आप सब काल में विस्मृति रहित हैं। हे दुर्धर्ष श्रीरामजी इस

समय वैष्णवं (विष्णु भगवान् की प्रार्थना सम्बन्धि आपने जन्म स्वप्रादुर्भाव का स्मरण कीजिये । श्रीसीताजी आपकी पूर्वपरायण। हैं। अर्थात् सर्वादि भूत आप में ही जिनका अयन है, आप से अभिन्नस्वरुपा विमला हैं, अर्थात् समस्त दोषों से शून्य हैं और परम साध्वी हैं, आपके आश्रयणरुप तपोवल से सुख पूर्बक नागलोक को प्राप्त हो गई हैं। स्वर्ग (नित्यसाकेत धाम) में पुनः आपको उनका अत्यन्त संयोग होगा इसमें संशय नहीं है ।

आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१८॥

हे श्रीरामजी यह आदि काव्य श्री वालमीकीय रामायण आप में हीं प्रतिष्ठित है, अर्थात् आपका हीं परत्बेन प्रतिपादित हैं।

श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया सर्वं सुरैः सह।
दिव्यमद्भुतरुपन्त सत्यवाक्यं सनावृतम् ॥१९॥

हे श्रीरामजी आपके परत्व का प्रतिपादन करने वाले इस काव्य को मैंने देवताओं के साथ सुना है कि यह काव्य सत्य वाक्य वाला है और अनावृत अविद्यामूल प्रलापों से रहित अज्ञान के आवरणों से रहित हैं। अतएव दिब्य और अद्भुत रुप है।

इस प्रकार ब्रह्माजी के कथनानुसार श्रीरामजी ने श्रीलव और कुश के द्वारा पूर्ण भविष्य काव्य को सुना, अन्त में जब श्री रामजी अपने दिव्यधाम को जाने को तैयार हुए उस समय—

अथ तस्मिन मुहूर्तेतु ब्रह्मालोक पितामहः।
सर्वैः परिवृतो देवै भूंषितैश्च महात्मभिः ॥२०॥

आययौ यत्र काकुत्स्यः स्वर्गाय समुपस्थितः।
विमान शतकोटिभि सम्वृतः ॥२१॥

तदनन्तर उस समय अनेक भूषणों से विभूषित देवों और महात्माओं के समेत लोकपितामह श्रीब्रह्माजी उस जगह पर आये, जहाँ पर काकुत्थ श्रीरामजी स्वर्ग (अपने धाम साकेत) को जाने के लिये उपस्थित थे। उस समय श्रीरामजी सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से घिरे हुए थे।

दिव्य तेजोवृतं व्योमज्योतिर्भूत मनुत्तमम्।
स्वयं प्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुण्यकर्मभिः ॥२२॥

उस समय अपने हीं दिव्य तेज से आकाश व्याप्त था, दूसरे अपने हीं प्रकाश से प्रकाशमान पुण्यकर्मा स्वर्गियों की किरणों से अतिशय प्रकाशमान हो रहा था।

पुण्यवाता ववुश्चैव गन्धवन्तः सुखप्रदाः।
पपात पुष्पवृष्टिश्चदेवैर्मुक्ता महौघवत् ॥२३॥
तस्मिंस्तूर्यशतैः कीर्णे गन्धर्वाप्सर संकुले।
सरयू सलिलं रामः पदभ्यांसमुपचक्रमे ॥२४॥

उस समय सुख देने वाली सुगन्धित पवित्र हवा चलने लगी और देवताओं के द्वारा बरसी हुई पुष्पों की वर्षा समूह रुप से होने लगी। सैकड़ों तूर्य आदि बाजा बज रहे थे और गन्धर्व, अप्सरा आदि से वह स्थल व्याप्त था, उसी समय श्रीरामजी पैदल हीं श्री सरयू जल में (चलने को तैयार हुए)—

ततः पितामहो वाणींत्वन्तरिक्षादभाषत ।
आगच्छविष्णो भद्रं ते दिष्टया प्राप्तोसि राघव ॥२५॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविश स्वस्विकां तनुम् ।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥२६॥

उसके बाद अन्तरिक्ष से पितामह श्रीब्रह्माजी ने यह वाणी कही कि हे विष्णो (सर्वत्र व्यापक) श्रीराघव आइये आपका कल्याण हो, बड़े भाग्य से आप प्राप्त हुए हैं। देवों की सी आभा (तेज) वाले अपने भ्राताओं के साथ अपने तनु (तनुवत् अत्यन्त प्रिय) धाम में प्रवेश करें। अथवा आपके अनेक धाम हैं। अतः जिस धाम में प्रवेश करना चाहते हैं उसी अपने धाम में प्रवेश करें।

वैष्णवीं वा महातेजो यद्वाकाशं सनातनम् ।
त्वं हि लोकगतिर्देव नत्वां केचित्प्रजानते ॥२७॥
ऋते मायां बिशालाक्षीं तवपूर्वपरिग्रहाम् ।
त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ॥२८॥

हे महातेज श्रीरामजी वैष्णवी तनु में प्रवेश करें (क्योंकि इस समय आप मनुष्य देह धाण किये हैं) अथवा सनातन आकाश (परब्रह्म) में प्रवेश करें। ब्रह्माजी स्तुति करते हैं कि हे देव श्री रामजी आप हीं समस्त लोकों की गति (परायण) हैं आपको अतिशयतप: सम्पन्न भी नहीं जान पाते। आप की पूर्व परिग्रह अनादि काल से सहवासिनी विशाल नेत्रा श्रीजानकी जी के विना अचिन्त्य महान् अद्भुत, अक्षय और अजर आपको कोई नहीं जानता है। अचिन्त्य से देशपरिच्छेद महान् अद्भुत से वस्तु

परिच्छेद अक्षय से कालपरिच्छेद इन तीनों परिच्छेदों से आप शून्य हैं और लोकगति से समस्त लोकों को स्वर्गादि गति आप हीं प्रदान करने वाले हैं। अतः आप जिस धाम में प्रवेश करना चाहें, उसमें प्रवेश करें।

पितामह वचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं : सशरीरः सहानुजः ॥२९॥

श्रीरामजी के लोक की आकाक्षा करने वाले जनों को संतान लोक का पर्यायवाची अपने लोक में पहुँचा कर क्रम से अपने परम धाम साकेत में ले जाने की इच्छा से परम दयालु भगवान् श्रीराम जी अपने जनों को अपने गन्तव्य लोक से भी उत्तम लोक को पहुँचाया, उनके संतोष के लिये श्रीरामजी स्वयं भी उपेन्द्र विष्णु) लोक को हीं जाते हैं, ऐसा कहते हैं—महामति सर्वज्ञ भगवान् श्री रामजी प्रागुक्त विचार का निश्चय करके व्रह्माजी के बचन को सुनकर अनुजों के समेत सशरीर वैष्णव तेज में प्रवेश किया।

ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्तिस्म देवताः।

तदनन्तर विष्णुमय (उपेन्द्र से अभेद को प्राप्त) देव नित्यक्रीड़ावान् श्रीरामजी की सब देवताओं ने पूजा की।

अथविष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाचह ॥३०॥
एषां लोकं [१]जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥३०॥[१/२]

इसके वाद विष्णु (विष्णु शरीर संक्रान्त शरीर) महातेजस्वी श्रीरामजी ने व्रह्माजी से कहा कि हमारे साथ आये हुए इस समस्त जीव समुदाय को निज लोक प्रदान करें।

तच्छ्रुत्वाविष्णु वचनं ब्रह्मालोक गुरुः प्रभुः ।
लोकान् संतानमान् नाम यास्यन्ती मे समागताः ॥३१॥

सर्वलोककर्ता और वेदादि सर्वविद्योपदेष्टा प्रभु नित्यनैमित्तिक निषिद्ध कर्मों के फल देने में समर्थ श्रीब्रह्माजी विष्णु शरीर में प्रविष्ट श्रीरामजी के वचनों को सुनकर बोले कि आप के साथ में आए हुए ये सब सन्तान नामक लोकों (ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वारा मुक्तिलोकों) को जायेंगे ।

यच्चतिर्यगतंकिंचित्त्वामेवमनु चिन्तयत् ।
प्राणांस्त्यक्षयति भक्त्या तत्संतानेषु निवत्स्यति ।
सर्वैब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्म लोकादनन्तरे ॥३२॥

और जो कोई व्यक्ति भाव से प्रत्येक पदार्थ में आप का हीं चिन्तवन करता हुआ अपने प्राणों को त्यागेगा, वह समस्त सत्य, ज्ञान, आनन्दादि ब्रह्मगुणों से युक्त ब्रह्मलोक से परे संतानलोक में वास करेगें ।

तथ ब्रुवति देवेशे गोप्रतार मुपागताः ।
भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रु विक्लवाः ॥३३॥

ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर हर्षपूर्ण आसुओं से युक्त सर्व जन समुदाय गोप्रतार (गुप्तारघाट) पर आये और सरयू के किनारे गये ।

अवगाह्याप्सु यो यो वै प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ।
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ॥३४॥

तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयू जलम् ।
संप्राप्य श्रिदिवं जग्मु प्रभासुर वपूंषि तु ॥३५॥
दिव्या दिव्येन वपुषा देवादीप्ताइवाभवन् ।

उस समय सरयू के जल में जिस-जिसने अवगाहत (डुबकी लगा) कर प्रसन्न होते हुए प्राणों का त्याग किया, वह-वह मनुष्य शरीर को त्याग कर विमान पर बैठ गया। तिर्यक् योनियों (पशु-पक्षियों) के सैकड़ों (अनन्त) प्राणी भी सरयू जल को प्राप्त कर प्रकाश युक्त शरीरों को धारण कर स्वर्ग में गये और दिव्य शरीर से देदीप्यमान देवों की तरह प्रकाशित हुए।

गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ॥३६॥
प्राप्य तत्तोमविक्लेदं देवलोक मुपागमन् ॥
ततः समागतान्सर्वान् स्थाप्यलोक गुरुर्दिवि ॥
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत् ॥३७॥

स्थावर और जंगम सरयू जल में जाकर सरयू जल में मज्जन करके देवलोक को प्राप्त हो गये। तदनन्तर लोक गुरु (श्रीरामजी) साथ में आये हुए सब प्राणियों को स्वर्ग में स्थापित करके अत्यन्त प्रमुदित देवों (नित्य सूरियों) के साथ महत त्रिदिव नित्य अक्षय्य साकेत धाम को गये।

ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरा ।
येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३८॥

ततः भक्तजनों को स्वर्ग प्राप्त कराकर विष्णु पूर्वकाल की भाँति स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हुए, जिन्होंने चराचर तीनों लोकों को व्याप्त कर रक्खा है।

इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ।
सर्वं पापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ।।३८।।
पापान्यपि चयः कुर्यादहन्यहनि मानवः ।
पठत्येकमपि श्लोकं पापात्स परिमुच्यते ।।३९।।

यह वाल्मीकि रामायण रुप आख्यान आयु को बढ़ाने बाला, उत्तम भाग्य प्रदाता तथा पाप नाशक है। जो मनुष्य इसके श्लोक का एक चरण भी पढ़ता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रतिदिन पाप भी करता है, परन्तु वाल्मीकि रामायण का एक श्लोक भी पढ़ लेता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

एतदाख्यान मायुष्यं स भविष्यं सहोत्तरम् ।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद्ब्रह्ममाप्यन्वमन्यत् ।।४०।।

भविष्य के सहित अर्थात् भगवान् के जाने के बाद भगवत् अयोध्या वृतान्त के सहित और सहोत्तार अर्थात् "एतावदेतदाख्यानम्" इस श्लोक के पहले के उत्तर काण्ड सहित, आयुवर्धक इस आख्यान को प्रचेता के पुत्र श्रीवाल्मीकि जी ने बनाया। जिसका श्रीब्रह्माजी ने भी अनुमोदन समर्थन किया।

इति श्रीवाल्मीकीय काव्योपनिषद श्रीललित
किशोरी शरण संगृहीतायां
उत्तर काण्डं समाप्तम् ।

सीताराम प्रसादेन वाल्मीकेश्च महात्मनः ।
मारुतेः कृपया श्रीदा समाप्ति सिद्धितां गता ॥ १॥

सेयं श्रीराम प्रीत्यर्थं भूयाद्भूयः शुभावहा ।
शान्तिः शान्तिः सदा शान्तिः शान्तिः शान्तिः शुभान्विता ।२।

ललित किशोरीशरणेन चेयं वेदान्त विज्ञान विशारदेन ।
पृथक्कृता काव्यपथस्तमुदात् प्रसीदतां दाशरथि ससीतः॥३॥

श्रीसीतारामजी और महात्मा श्रीबाल्मीकिजी के प्रसाद से तथा श्रीहनुमान् जी की कृपा से श्री को प्रदान करने वाली यह वाल्मीकि काव्योपनिषद् समाप्ति को प्राप्त हुई। तथा सिद्धि भाव को प्राप्त हुई। यह वाल्मीकि काव्योपनिषद् श्रीरामजी को प्रसन्न करने वाली हो और बारम्वार शुभ करने वाली हो। शान्ति, शान्ति सदा शान्ति हो और वह शान्ति सदा हीं शुभ शान्ति से युक्त हो।

वेदान्त विज्ञान ने विशारद् श्रीललित किशोरी शरणजी महाराज ने इस वाल्मीकि रामायण रुप काव्य को क्षीर समुद्र से अलग किया। इस सेवा से श्रीजनक राज किशोरी समेत श्री दशरथ नन्दन श्रीरामजी प्रसन्न हों।

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीत मस्तु मा विद्विषावहै ॥१॥

ॐ शन्नोमित्रः शंवरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥२॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सम्वत् २०२६ वैशाख शुक्ल ९ श्रीजानकी
नवमी को पं० श्री अखिलेश्वर दास
श्री अयोध्या निवासी कृता
भाषा टीका समाप्त हुई ।
शुभं भूयात् ।

सुधारक लेखक मंडित हरीदास
स्त्रीय व्याकरणाचार्य कलाकार

॥*॥ श्रीगणेशाय नमः ॥*॥

ग्रन्थ कर्त्ता का जीवन परिचय

सृष्टि सम्पात सूत्र से पूर्व ऋग्वेद वर्णित इस ऋचा — (अग्ने पूर्वेभिः ऋषिभिरीग्यो नूतनैरुत)…के प्रमाणानुमार कलियुग के सहस्राब्दी में जिन-जिन नूतन ऋषि लोगों का नाम — उनके कार्य व्यवहार सूत्र में विविधमणि के समान पिरोये प्रकाशमय देखे वा अनुभव किये जाते हैं, उनमें अनर्धमणि दाने का वना हुआ सुन्दर सुमेरुभूत यदि श्री १०८ महात्मा ललित किशोरीशरणजी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति — इसलिये नहीं होगी कि इन्होंने निस्सन्देह अपने प्रखर पाण्डित्य एवम् तपश्चर्या की ललित लीला से श्रुतिस्मृतिवहिर्भूत-कुतार्किक, कल्पापोढ़ पाखण्डी जनों का पाखण्ड प्रचार हिमहत शोभाध्वस्त कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड पुष्करणी के मुकलित पुष्कर-मुखमण्डल को पुनरुज्जीवित एवम् प्रकाश करने के लिये स्वविरचित (बाल्मिकीय काव्योपनिषत् नाम का ग्रन्थ नवोदित दिनमणि मण्डल के समान प्रस्तुत कर अध्यात्मवादी विद्वानों काल्पनिक गगन को उद्भासित एवम् सगुण वनाये हैं। यथा 'द्वापर युगस्थ वादरायण मुनि मुखगीत गीतोपनिषत् की प्रशंसा की दिशा में यह सार गर्भितोक्ति है कि—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः
पार्थो वत्सः सुधी भोक्ता दुग्धं गीता मृतं महत्।

तथा आज भी हमारे कलियुग जात नूतन मुनि मन विरचित यह काव्योपनिषत् भी कुतार्किक कुतर्कित वाल्मीक के भित्ती को भेदन कर जिज्ञासु जनों का संशय महोरग को मारकर उपासनामृत का पान करा रहे हैं।

निश्चय ही श्री महात्मा जी ने अपने प्रखर पाण्डित्य मन्दराचल से अगाध वेद एवम् पुराणोदधि को मन्थन कर हरि के कौस्तुभ मणि से अपने उत्तराधिकारी ससार के लिये कौस्तुभ मणि प्रदान किये गये हैं। श्री महात्माजी आत्मवत्ता ऐसी थी कि दिन में एकवार अवलोकित किये गये वेद और पुराणादिक विषय को अपने सायंकालिक कथा प्रवचन में प्रासंगिक अनेको वेद की ऋचा तथा पुराणादिक अनेको श्लोक के साथ श्रोताओं को श्रवण करते थे। महात्माजी की धारणा शक्ति एकावधानता का परिचय दे रही थी। शास्त्रीय कठिन से कठिन विषयों को बहुत समय तक के लिये ये अपने स्मृतिसात् कर लेते थे। चारो वेद अष्टादश पुराण एवम् उपनिषत् आदि के हस्तात्मक विद्वान विद्वन्मण्डली में श्री महात्माजी समझे जाते थे। अपनी स्वल्पावश्यकतानुसार जीवन व्यवहार्य वस्तुओं का संग्रह और त्याग गीता के इस श्लोक का—

यदृच्छा लाभ सन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः·······

मानो सेतु ही इनका हृदय वन गया था। ये स्थिर वुद्धि असम्मूढ़ और ब्रह्मवित् होने के कारण सांसारिक किसी भी भौतिक वित्त की ओर अपना ध्यान नहीं देते थे। अथवा वे चीजें इन्हें आकर्षित नहीं कर पाती थी। कर सके तो कैसे यह विचारणीय

है कि जब इनके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीराम का हृदय के साथ इनका हृदय जुरकर पूर्णकाम हो गया था तो अपूर्णता आवे कहाँ से और क्यों ? वास्तव में इस पाञ्चभौतिक शरीर में रहते हुये भी घटाकाश पठाकाशादिक मिथ्यावरण से मुक्तकर महाकाश स्वरूप हीं जैसे आपने शरीरस्थजीव का भी मिथ्या आवरण भंग कर—

जीवो ब्रह्मैव नापरः........

इस वेदान्त वचन को अपने में भी चरितार्थ कर ब्रह्मस्वरुप हो गये थे। उपदेशार्थ अपने समीप आये हुये मनुष्यों को यथा योग्य अधिकारी समझकर पुराण का सोदाहरण इस श्लोक की—

कुरंग मातंग मतङ्ग भृङ्ग मीनाहताः पञ्चभि रेव पञ्च....

तथ्य पूर्ण व्याख्या सुनाते, तथा इन्द्रिय निग्रह कर संसार में जीवन जापन करने का आदेश देते थे। शास्त्रीय वाद-विवाद के समाधानार्थ दूर-दूर से विद्वान् इनके समीप आते और उचित समाधान इनसे पाकर सन्तुष्ट हो जाते थे। विश्व प्रख्यात गौतमाश्रम में निर वच्छिन्न पैंतालिस वर्ष पर्यन्त क्षेत्रन्यास पूर्वक निवास करते हुये जिस तरह दैनिक कर्त्तव्य का आप सत्कार करते थे ? उसी तरह—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी........

इस उपदेश वचन का साक्षात् कार पूर्वक निरव, शान्त वातावरण से युक्त निशीथ समय में भी त्रित्रता सम्वलित सश्वर मधुर प्रणवोच्चारण आपका दिशाओं को शब्दायमान करता हुआ मानो विश्व को सजग एवम् जागरूक होने के लिये श्रवण में उपदेश शंखध्वनि का संदेश पहुँचाया करता था। आपकी शान्ति

प्रियता और त्याग भावना ने ही अयोध्या धाम लक्ष्मण किला का महन्थ बनने से आपको मुक्त कर—

नलिनी दलमिवाम्भस ।

'या साधु न चलते जमात'

का परिचय देता हुआ सगुण शान्त मिथिलास्थ परमपावन गौतमाश्रम में भेजा था। इनके आत्म सिद्धि का अलौकिक विषय इनके जीवनकाल में अनेको वार लोगों को देखने में आया, जिसमें एक यह विषय भी ध्यान देने का है, कि फिर इन्होंने इस लोक को छोर कर (साकेत) लोकयात्रा से सात रोज पूर्व ही कहा था ? जो कार्तिक शुक्ल सप्तमी सोम को ब्रह्म मुहूर्त में मैं साकेत यात्रा करूंगा। मेरे दांये आँख की पुतली फटेगी। मेरा प्राण वायु उसके द्वारा निकलेगा, और मैं सूर्य लोक होते हुये साकेत धाम को जाऊंगा। वस्तुतः इनके दिव्य चक्षु अवलोकित एक विशिष्ट विषय अत्रत्य जनता में किसी–किसी को जो उक्त समय पर घर से बाहर निकला और जिसकी आँखे अहल्यास्थान की दिशा की ओर परी उसका कथन है कि आज ब्राह्म मुहूर्त में अहल्यास्थान में चमकता हुआ एक रथ आकाश से उतरा उसका वास्तविक तथ्य तो इसमें यह है कि श्रीभगवान् ने आपको अपना सालोक्य प्रदान करने के लिये हीं उक्त रथ को आपके आगवानी में भेजा था।

पं० श्रीदेवनारायण झा, प्रधानाध्यापक

गौतम संस्कृत उच्च विद्यालय अहल्यास्थान।